क्त-भारत विशेषांक

ल्लभाचार्य : परिचय और सिद्धान्त

ब्रजरस उन्नायक–श्रीवल्लभाचार्य

चार सम्प्रदाय आश्रम

'भक्त-भारत ग्रन्थमाला'–वृन्दावन के प्रकाशन

१. **श्री कृष्णकर्णामृत**–ब्रजरस का अनूठा ग्रन्थ, एक बार अध्ययन करें पर अन्तःकरण भाव-रस सागर में तैरने लगता है, मूल्य १२.५

२. **पद्यावली**–प्राचीन रसिक कवियों की भावपूर्ण संस्कृत वाणियों श्री रूपगोस्वामी द्वारा सङ्कलन। हिन्दी अनुवाद सहित मूल्य ३.५

३. **रामकृष्ण लीलामृत**–श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन मूल्य २.५

४. **स्वस्थ रहने के उपाय**–स्वास्थ्य रक्षा के लिये उपयोगी मूल्य २.८

५. **भक्ति रत्नावली**–श्रीमद्भागवत के १८ हजार श्लोकों में से चुने हु नवधाभक्ति विषयक श्लोक हिन्दी टीका सहित मूल्य २.५

६. **श्रीमद्भागवत तत्व विमर्ष**–भागवत पर उठने वाली शङ्काओं क प्रमाण सहित समीचीन समाधान। मूल्य १.००

७. **रासपञ्चाध्यायी**–मूल संस्कृत मूल्य ००.७५ हिन्दी टीका मूल्य १.२

८. **जन्मभूमि**–कृष्ण-जन्मभूमि मथुरा का ऐतिहासिक वर्णन मूल्य १.५

९. **भक्ति ग्रन्थमाला**–श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती के 'माधुर्य कादम्बनी' आ पाँचों ग्रन्थों का बंगला से हिन्दी अनुवाद, मूल्य १.५

१० **व्रजेश्वरी श्रीराधा**–श्रीराधा के सम्पूर्ण जीवन की झांकी के सहि उनके वैदिक, पौराणिक और साहित्यिक रूप का विवेचन, मूल्य २.५

११. **श्रीयमुनाष्टक**–श्रीकृष्ण की पट्टमहिषी श्रीयमुना के सम्बन्ध व जानकारी के लिये यह ग्रन्थ परम उपयोगी है, मूल्य १.५

१२. **वैदिकबोध मीमांसा** वैदिक विषयों पर उठने वाली शङ्काओं व प्रमाण सहित समाधान, मूल्य ००.५

१३. **श्रीराधारमण पदावली**–श्रीकृष्ण विषयक पद मूल्य ००.५

१४. **जीवनझाँकी**–चार सम्प्रदाय आश्रम के संस्थापक श्री १०८ श्रीगुरुदे स्वामी कृष्णानन्ददासजी का जीवन चरित्र, मूल्य ००.५

क-भारत ग्रन्थमाला मणि—६

Shri KESHAVJI GAUDIYA MATH Mathura (U.P.)

ब्रजरस उन्नायक

वल्लभाचार्य : परिचय और सिद्धान्त

Shri Keshavji Gaudiya Math
Mathura U.P.

लेखक : सम्पादक
श्रीरामदासजी शास्त्री
महामण्लेश्वर

श्री कृष्णलाल बुटाला

भक्त-भारत विशेषांक

र्ष—६ अङ्क—१, २, ३
ार्षिक—छः रुपये एक प्रति—पचास पैसे

इस अङ्क का मूल्य—एक रुपया

प्रकाशन संस्थान :
भक्त-भारत-ग्रन्थमाला
चार सम्प्रदाय आश्रम
वृन्दावन, उ० प्र०

●

प्रथम संस्करण—३०००

●

फाल्गुन पूर्णिमा
कुम्भ-मेला—१९७४

●

सर्वाधिकार सुरक्षित

●

मूल्य : १.५०

●

मुद्रक :
प्रीतमलाल गोस्वामी
रतन प्रेस, वृन्दावन

पाठकों से

यह 'भक्तभारत' का नवमे वर्ष का विशेषाङ्क "श्रीवल्लभाचार्यः—परिचय और सिद्धान्त" आपके हाथ में है, इसी अङ्क में जनवरी, फरवरी और मार्च का अङ्क सम्मिलित है।

पूर्व सूचना के अनुसार इस वर्ष "ब्रजरसमाधुरी अङ्क" प्रकाशित करने का निश्चय था, किन्तु कई कारणों वश वह संभव न हो सका। मुख्य कारण तो ब्रजरस-माधुरी को सजाने के लिये जिस प्रकार का संकलन चाहिये था—वह अभी तक नहीं हो सका है। संकलन भी समय सापेक्ष होता है, इस वर्ष मुझे भक्त-भारत के कार्य के लिये तनिक भी समय नहीं मिल सका। कार्तिक मास में नैमिषारण्य आदि तीर्थों की यात्रा, उसके पश्चात् वृन्दावन कुम्भ मेला की तैयारी में लग जाना पड़ा।

कुम्भ मेला की विस्तृत चर्चा तो हम 'भक्त-भारत' के किसी आगामी अङ्क में करेंगे, यहाँ तो इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि यदि कुम्भ मेला के आयोजन में जन जागरण और सरकार को उत्साहित न किया गया होता तो कुम्भ मेला इस प्रकार न सज पाता, मेले का विशाल रूप और सभी व्यवस्थायें बड़े परिश्रम के बाद ही सम्भव हो पायी थीं।

हाँ ! तो 'ब्रज-रसमाधुरी' संकलित न हो सकी। उन्हीं दिनों हमारे अनन्य प्रेमी-भक्त श्रीकृष्णलाल जी वुटाला जो बम्बई छोड़कर वृन्दावन वास कर रहे थे, एक दिन मुझे श्रीवल्लभाचार्यजी द्वारा प्रतिपादित उपासना-पूजा और भावमयी भक्ति सुना रहे थे। मुझे हृदय में लगा कि वैष्णवाचार्यों ने भक्ति मार्ग को कितना सुगम-सुलभ और आकर्षक बनाया है, हृदय खिचता ही चला जाता है, क्यों न यह 'भक्त-भारत' के पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाय ? उसी दिन से मैंने श्रीकृष्णलाल जी वुटाला को कहा—आप लिखना प्रारम्भ कीजिये, श्रीवल्लभाचार्य की कृपा होगी तो अवश्य ही यह प्रकाश में आ जायेगा।

प्रेस कापी तैयार करने में बड़ी कठिनाई सामने आयी, गुजराती भाषा भासी श्रीकृष्णलाल जी ने बड़े ही परिश्रम से इस लेख को तैयार किया, किन्तु गुजराती से हिन्दी करना टेड़ी खीर हो गई, किसी तरह मैंने उसे हिन्दी में ढाला और प्रेस को दे दिया।

जैसा भी जो कुछ भी हो सका, पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है आचार्य-चरण के इस रसमय चरित्र और सिद्धान्त के अध्ययन से किसी एक भक्त हृदय को भी आनन्द प्राप्त होगा तो मैं कृत-कृत्य हो जाऊँगा।

हम अपने पाठकों को पहले भी सूचित कर चुके हैं कि इसी भाँति चारों सम्प्रदाय के आचार्यों का परिचय और सिद्धान्त समय-समय पर प्रकाशित करेंगे। यह कब संभव होगा, इसकी सूचना 'भक्त-भारत' के आगामी अङ्कों में दी जा सकेगी।

—रामदासशास्त्री संपादक

आभार

पूज्यपाद श्रीशास्त्री जी की कृपा और प्रेरणा का मैं आभारी हूँ जिनके परम सौहार्द पूर्ण आशीर्वाद से मैं कुछ लिख सका, आपकी आत्मीयता ने मुझे बहुत उत्साहित किया, तभी यह आचार्य चरण की सेवा का कार्य सम्पन्न हो सका है।

मैंने इस ग्रन्थ के संकलन में पुष्टिमार्गीय ग्रन्थों का ही आश्रय लिया है, प्रस्तुत ग्रन्थ मैंने आत्मतृप्ति और वैष्णव महानुभावों के स्वानन्द के लिये ही लिखा है, इसमें कई प्रकार की त्रुटि रह गई हैं, रसिक महानुभाव मुझे क्षमा करेंगे। रसिकजनों के श्रीचरणों में मेरी यही विनती है:—

रसिक जनों से बीनती, सुनियो परम उदार।
मेरो कछु न मानियो, पायौ कृपा प्रसार॥
अपनी वस्तु जानि के, लीजो आप अपनाय।
न्यूनाधिक विधि अविधि, जो कछु कहो न जाय॥

रसिकों का दासानुदास—
कृष्णदास म० तुटाला. बम्बई

श्रीगोकुलेश्वराष्टक

श्रीमाध्वगौड़ेश्वर सम्प्रदायाचार्य—
श्रीगौरकृष्ण गोस्वामी शास्त्री, काव्य-पुराण-दर्शन तीर्थ, वृन्दावन

सूर्यात्मजा तरलतुङ्ग तरङ्गरङ्ग-
सङ्गाङ्ग संश्रितनरामरवृन्दवन्द्यम् ।
कान्तं नितान्त विविधान्तकवैदनान्तं
वाञ्छामि गोकुलपतेश्चरणारविन्दम् ॥१॥

श्रीरूपदेव रघुनाथसनातनाग्र्य-
गोपालभट्टजनजीवन जीव जीवम् ।
श्रीविठ्ठलेश्वरवरवंशविलासबीजं,
वाञ्छामि गोकुलपतेश्चरणारविन्दम् ॥२॥

वृन्दारकार्चितमनन्तजनावलम्बं,
विन्यस्त विश्वजनताकरुणाकदम्बम् ।
अम्भोजिनीनवदलारुणरागबिम्बं,
वाञ्छामि गोकुलपतेश्चरणारविन्दम् ॥३॥

गोपाङ्गनोन्नत पयोधर मण्डलाग्र-
सिंहासनोपरि विराजितराजरूपम् ।
वज्रध्वजाब्जप्रवरांकुश चाप चिह्नं,
वाञ्छामि गोकुलपतेश्चरणारविन्दम् ॥४॥

गोविन्दमुन्दरवधूनयनारविन्द-
नित्योत्सवोत्तमप्रकारविकास कन्दम् ।
आनन्दमन्दिरममन्द मुनीन्द्रनन्द्यं,
वाञ्छामि गोकुलपतेश्चरणारविन्दम् ॥५॥

चन्द्रावली चन्द्रक चुम्बिताग्र्यं,
गान्धर्विकामदनमादनकाभिरामम् ।
लीलाललाममविरामगुणैकग्रामं,
वाञ्छामि गोकुलपतेश्चरणारविन्दम् ॥६॥

विख्यातविश्ववरवन्दितवल्लभार्य-
ध्यानैकगम्यमखिल श्रुतिसारसारम् ।
विद्याविलासनवरासरसाभिसारं,
वाञ्छामि गोकुलपतेश्चरणारविन्दम् ॥७॥

माणिक्य मौक्तिकतमोमणिहारिहीर-
पुष्पोप रागनवनीलप्रवालजाल ।
रत्नप्रभाच्छुरित मञ्जुलनूपुरालि,
वाञ्छामि गोकुलपतेश्चरणारविन्दम् ॥८॥

श्रीगोकुलेश्वरवराष्टकमत्युदारं
श्रेयस्करं पठति यः प्रयतः प्रभाते ।
बाधाविवादविविधादिविद्याविमुक्तः,
साक्षाल्लभेत भगवतश्चरणारविन्दम् ॥ ९॥

श्रीबल्लभाचार्य गुण-गरिमा

श्रीहरिओम शर्मा, वृन्दावन

★

सदानन्द सन्दोह मूर्ति श्रीबल्लभ वन्दौं।
हृदय दरी तम हरो वदन-विधु, इन्दुविनिन्दौं ।।
कनक कमल कमनीय अङ्ग सुर तरु मद टारैं।
कृष्ण भक्ति मकरन्द वितर अलि-अवलि-उबारैं ।।
कृष्ण बदन श्रीबल्लभेश वपु सुन्दरताई।
भुवन मनोहर नैंन चकोरन पियत अघाई ।।
गौर अङ्ग पर कान्ति हेम गिरि पै तम हारी।
जगमगात जनु प्रात तपन आतप सुखकारी ।।
प्रकृति परे तनु चिन्तनीय चितामणि धारी।
इनके सम नहिं होय सकै प्राकृतत्रिमिरारी ।।
जोइ भजत श्रीबल्लभेश के आनन्द अङ्गा।
तिन्हैं विपोषत तीर तरुन जिमि यमुन तरङ्गा ।।
श्रीराधा वृषभानु-नन्दिनी गुन गरवीली।
कृष्ण-बल्लभा नाम बल्लवी मौलि छवीली ।।
तिनहीं के अवतार भूमि सुर कुलके मण्डन।
श्रीबल्लभ आचार्य प्रगट माया मत खण्डन ।।
सकल शक्ति के धाम मूक को वाणी भूषण।
करैं काक कों हँस सदूषण कों निरदूषण ।।
याहि हेतु तें कहे कृष्ण वेदनतें न्यारे।
शैशव में तारुण्य लौकिकहु धर्म निवारे ।।
प्रेम रङ्गो तिहु लोक वेद तें बड़ो विलक्षण।
पुष्टि मार्ग को कहो बल्लभाधीश विचक्षण ।।
करै रङ्क को राय सोइ तो कृपा कहावै।
हीन तमोगुण सत्व शिरोमणि किन बन जावै ।।
वेद मार्ग सों पुष्ट मार्ग गति यों द्विज राई।
को विदेश श्रीबल्लभेश विपरीत बताई ।।
भक्ति युक्त मम भक्त सक्त मोमें मान जाको।
नहीं ज्ञान वैराग्य प्राय श्रेयस्कर ताको ।।
येहि दोउ श्रीवाक्य यही सिद्धान्त जनावैं।
मुख्य कृष्ण के भक्त सहज निर्गुण हो जावैं ।।

कही श्रेष्ठ इन दोउ भक्त सों श्रीब्रज नारी।
उद्धव इन पद धूर धरन शिर चाह उचारी॥
तीन लोक के भक्त शिरोमणि मूरति नेहा।
इनके निर्गुण होन माँहि फिर का सन्देहा॥
या प्रकार श्रीबल्लभेश मुख वृष्टि भई है।
अपर धनन सों बड़ी अपूरव सुधा नई है॥
सोइ सुमरबे जोग यहाँ निज-निज मन माँही।
बल्लभेश रवि रूप जनावन की परछाँही॥
श्रीबल्लभ आख्यान माँहि सतये आख्याना।
रुचिर चतुर्थी पंक्ति विरुद अस कीनो गाना॥
बोल बल्लभाधीश सुवन नव निर्मल बानी।
जिनकी गति ब्रह्मादि देव हूँ नें नहिं जानी॥
भाव पाय श्रीबल्लभेश की एक कृपा सों।
नहीं साधनन साध्य आश इनकी तज तासों॥
कृपा दृष्टि सों भाव हिये में जो उग आवै।
पुष्टि भाव है सोई प्रेम सागर उमगावै॥
कृष्ण नाम गुन गान और श्रीविग्रह सेवा।
इन्है कहैं फल रूप रसिक श्रीवल्लभ देवा॥
श्रवण कीरतन आदि इनहू फल रूप बताये।
इन्हैं साधनहु गूढ़ वेदि श्रीवल्लभ गाये॥
भक्ति शब्द ये प्रेममयी सेवा में राखो।
योग रूढ़ ही ताहि पढ़ो पहिलो जस भाखो॥
वेद मार्ग में लोक मूर्ति की पूजा मानैं।
पुष्टि मार्ग में मूर्ति नहीं साक्षात् बखानैं॥
मूर्ति नहीं ये कृष्ण कृपा कर आप पधारे।
सकल शक्ति निधि हमें उधारन ये वपु धारे॥
ब्रह्म शिवादिक देवतान को दुर्लभ जोई।
हमैं कृपा कर भये सुलभ अस तनु धर सोई॥
अहङ्कार के नाश करन को श्रेष्ठ उपाया।
आत्म समर्पण कहो करी श्रीबल्लभ दाया॥

श्रीवल्लभाचार्य : परिचय और सिद्धान्त

●

भारत के इतिहास में सोलहवीं शताब्दि बहुत महत्वपूर्ण है, जब समग्र देश विधर्मियों से भयङ्कर आक्राँत था तब अनेक भगवद् स्वरूप और महानुभाव भक्त पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए और भागवत धर्म की रक्षा की। श्री चैतन्य महाप्रभु का प्राकट्य बङ्गाल में, श्रीहित हरिवंश जी का प्राकट्य व्रज में हुआ और श्रीवल्लभाचार्य जी का प्राकट्य मध्य प्रदेश में रायपुर जिला के चम्पारण्य गाँव में हुआ था, उन्होंने भक्ति कल्पलता की छाया विस्तृत कर भागवत धर्म की अक्षुण्ण रक्षा की।

श्रीमद् वल्लभाचार्य जी का जन्म सम्वत् १४३५ की वैशाख बदी एकादशी रविवार को हुआ था। उनके पिता का नाम लक्ष्मण भट्टजी और माता का नाम श्रीइल्लमागारू जी था। भारत के अन्य आचार्यों के सदृश आचार्य श्री के पूर्वज भी दक्षिण भारत में आन्ध्र प्रदेश के कांकरवाड़ गाँव के वेल्लनाटीय जाति के तैलंगी ब्राह्मण थे। उनका गोत्र भारद्वाज था, उनके कुटुम्ब के मूल पुरुष का नाम यज्ञनारायण भट्ट था और मूल पुरुष की पत्नि सुधर्मा थी। यह कुटुम्ब परम पवित्र विद्वान और धर्मिष्ठ था। यज्ञ नारायण भट्टजी ने ३२ सोमयाग अपने जीवन में किये थे, उनके पुत्र गङ्गाधर भट्ट ने २६ सोमयाग किये थे। गङ्गाधर जी के पुत्र गणपति भट्ट ने ३० सोमयाग किये। गणपति भट्ट के पुत्र वल्लभ भट्ट ने ५ सोमयाग किये और उनके पुत्र लक्ष्मण भट्टजी ने शेष ५ सोमयाग करके शत सोमयाग की पूर्ति के निमित्त एक लक्ष ब्राह्मणों को ब्रह्म भोज कराने दक्षिण से काशी जाते समय मार्ग में महानदी के तट चम्पारण्य गाँव में श्रीवल्लभाचार्य जी का प्रादुर्भाव हुआ। गर्भस्थ शिशु के महीने पूर्ण नहीं हुए थे, इसी बीच अपूर्ण मास में गर्भस्राव होने से बालक मृतप्राय समझकर माता एक शमीवृक्ष के नीचे रखकर थोड़ी दूर पर प्रसूति श्रम से विश्राम ले रही थी, तभी माता को भगवान ने साक्षात् दर्शन दिया और कहा कि मैंने तेरे गर्भ से पुत्र रूप से जन्म लिया है इस दैवी वाणी को सुनकर माता शमीवृक्ष के पास दौड़कर

आई तो देखा एक दिव्य तेजस्वी बालक अग्नि से चक्राकार आवृत है, माता ने परम वात्सल्य से वैश्वानर स्वरूप को अङ्क में लेकर पति के साथ काशी प्रयाण किया।

श्रीमद् वल्लभाचार्यजी का विद्याभ्यास माधव यतीन्द्र नाम के श्री माध्वसम्प्रदाय के आचार्य के पास हुआ था। आचार्यश्री ने केवल ११ वर्ष की वय में सम्पूर्ण वेदशास्त्र, गीता भागवत नारद पंत्ररात्र अ दि ग्रंथों का अभ्यास पूर्ण किया और समग्र समाज में 'बाल सरस्वति-वाक्पति' आदि पदवी से विभूषित हुए।

विद्याभ्यास पूर्ण करके आचार्य श्री ने समग्र भारत की तीर्थयात्रा-निमित्तप्रयाण शुरू किया, मार्ग में कृष्णदेव राजा का पाटनगर—विद्यानगर राजधानी में आचार्य श्री ने अपने मामा के घर निवास किया था, मामा भी बहुत विद्वान थे, उन्होंने आचार्य श्री को कृष्णदेव राजा की राजसभा में शङ्कराचार्य के अद्वैतवाद की संभावित विजय का समाचार दिया। आचार्य श्री ने दूसरे दिन प्रातःकाल राजसभा में उपस्थित होकर मायावाद को परास्त कर शुद्धाद्वैत भक्ति मार्ग की स्थापना की। आचार्य श्री ने शुद्ध ब्रह्मवाद स्थापित करके 'भक्तिमार्गाब्जमार्तंड का' नाम सुशोभित किया। कृष्णदेव राजा ने आचार्य श्री को जगद्गुरु की उपाधि से सम्मानित किया,तथा सेवक होकर श्रीमद् वल्लभाचार्य का कनकाभिषेक किया और ७००० दिनार (सुवर्ण मुद्रा) भेंट की, किन्तु आचार्य ने मात्र ७ दिनार सुवर्ण मुद्रा स्वीकार कर शेष मुद्रा ब्राह्मणों को बाँट दी। आचार्यश्री ने ७ सुवर्ण मुद्राओं से श्रीगोवर्धन नाथ जी की सेवार्थ प्रथम नूपुरादि आभरण बनवाये थे। उन्होंने श्रीगोवर्धन नाथ जी की मन्दिर-स्थापना के द्वारा यतिपुरा में पुष्टि संप्रदाय की भक्ति का मुख्य केन्द्र बनाया था।

आचार्यश्री प्रत्येक चातुर्मास व्रज में वास करते थे भारत की पद यात्रा के समय आप श्री कटीवस्त्र और श्वेत वस्त्र ही धारण करते थे एक हस्त में कमण्डलु और दूसरे हस्त में पलाश दण्ड धारण करते थे। बगल में दर्भासन और श्रीमद्भागवत रखते थे। आप नंगे चरण ही प्रदक्षिणा करते थे, आपका श्रीविग्रह सुघड़ और सर्वाङ्ग सुन्दर ब्रह्मचर्य के ओज से तेजस्वी पद्मलोचनयुक्त और स्वानंदतुण्डिल वदन-कमल द्वारा दर्शनार्थियों को मोदित करते थे। तीर्थयात्रा में आप बहुत कम शिष्यों को साथमें रखते थे। सायं होते ही नगर के बाहर जलाशय तट पर उपवन में विश्राम करते। आप स्वयं पाक बनाकर श्रीठाकुर जी को समर्पित कर अत्यन्त प्रीतिपूर्वक

दिन में एकबार ही प्रसाद लेते। जो पण्डित शास्त्रचर्चा करने आते उनका उचित समाधान करते रहते थे।

आप श्री एक समय श्री जगन्नाथ जी पधारे,तब वहाँ के राजा ने साम्प्रदायिक वादविवाद के अन्तिम निर्णयार्थ एक सभा में विद्वान पण्डित और आचार्यों को आमन्त्रित किया और वहाँ उपस्थित महानुभावों के समक्ष चार प्रश्नों के सम्यक् रूप से उत्तर देने की प्रार्थना की—

(१) मुख्य शास्त्र कौन है ?
(२) मुख्य देव कौन है ?
(३) श्रेष्ठ मन्त्र कौन है ?
(४) श्रेष्ठ कर्म कौन है ?

जब धर्म सभा अन्तिम निर्णय लेने में असमर्थ हुई तब आचार्य श्री ने राजा की सम्मति से जगदीश के समक्ष उपरोक्त प्रश्न का उत्तर रखा और निज मन्दिर का द्वार थोड़ी देर के लिये बन्द करा दिया। थोड़ी देर पश्चात् द्वार खोलने पर स्वयं जगदीश प्रभुने निम्न श्लोक कागज पर लिख कर निर्णय दे दिया।

एकं शास्त्रं देवकी पुत्र गीतं, एको देवो देवकी पुत्र एव।
मंत्रोऽप्येकस्तस्य नामानि यानि, कर्माण्येकं तस्य देवस्य सेवा॥

प्रेम स्वरूप श्रीकृष्ण ही परात्पर परब्रह्म तत्व है—श्रीकृष्ण के वदन निसृत गीता शास्त्र ही एक शास्त्र है—श्रीकृष्ण का नाम मन्त्र ही सर्वश्रेष्ठ मन्त्र है और उनकी प्रेम पूर्वक सेवा करना ही श्रेष्ठ कर्म है।

आप श्री का संक्षिप्त में सिद्धान्त रहस्य ज्ञान पद श्लोक द्वारा होता है आचार्य श्री ने वात्सल्य रस में ओत-प्रोत प्रेम लक्षणा भक्ति का उपदेश दिया। श्रीमद् भागवत को साक्षात भगवद् स्वरूप समझकर इसमें वर्णित श्रीकृष्ण लीला के गान द्वारा मनुष्य का परम श्रेय होता है। "पिबत भागवतं रसमालयं" कहकर श्रीहरि की शरण सिद्धि सिवाय अन्य सर्व धर्म श्रमरूप हैं—यह प्रतिपादित किया। रास पञ्चाध्यायी का कथन है 'कुर्वति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन्' आत्म कल्याण की अपेक्षायुक्त जीवात्मा भगवान में प्रीति करते हैं। भगवद् स्वरूप के साथ जीवात्मा का सम्बन्ध होते ही भगवद् अनुग्रह का परम मङ्गलकारी अरुणोदय होता है।

आचार्य श्री ने प्रथम तीर्थयात्रा सं० १५४५ में प्रारम्भ कर तीन वर्ष में समाप्त की। पश्चात् आपश्री ने दो वर्ष प्रयाग में त्रिवेणी सङ्गम के पास अडेल गांव में निवास कर ग्रन्थ लेखन द्वारा सर्व प्रथम तत्वदीप

निबन्ध का शास्त्रार्थ प्रकरण प्रकाशित किया और समझाया कि सम्पूर्ण वैराग्य प्राप्ति के अभाव में गृह त्याग उचित नहीं। सर्वत्र भगवान ही रक्षक है, यह विश्वास धारण कर वहाँ दुःसङ्ग न हो और तदीय जनों का सत्सङ्ग हो,वहाँ रहना "हरिस्तु सर्वतो रक्षां करिष्यति न संशयः,अतस्थेयं हरिस्थाने तदीयैः सह तत्परैः। अदूरे विप्रकर्षे वा यथा चित्तं न दुष्यति" आप श्री ने समझाया कि जगत मिथ्या नहीं है, किन्तु भगवद् कृति है। जीवात्मा माया कृत नहीं,किन्तु परब्रह्म का अंश है। दुःखी जनों की सेवा भी भगवद् सेवा है भक्ति मार्ग में कोमल हृदय अपेक्षित है। किसी के भी तिरस्कार से भगवान अप्रसन्न होता है, भगवद् सेवा-कथा द्वारा प्राणी मात्र का कल्याण होता है यह सच्चा ज्ञान है, अपने गृह को मन्दिर समझकर स्त्री, पुत्र, भाई, बहिन, माता-पिता सहित भगवत् सेवा करनी चाहिये,लौकिक चर्चा द्वारा वृथा काल गमन उचित नहीं और जीवन में जो सुख दुःख प्राप्त हो वह भगवद् इच्छा समझकर विवेक,धैर्य और भगवदाश्रय पूर्वक प्रभुका भजन करना। आपश्रीने दूसरी तीर्थयात्रा सं० १५५० में शुरू की, यह यात्रा सबसे बड़ी और महत्व-पूर्ण थी।आपने भारत की पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण दिशा के मुख्य तीर्थों में प्रयाण कर श्रीमद् भागवत की सप्ताह द्वारा भागवत धर्मों का उपदेश दिया, श्री गोवर्धन पधार कर श्रीनाथजी के स्वरूप की प्रतिष्ठा की और मन्दिर बनाकर रामदास जैसे त्यागी भक्त को सेवा, कुम्भनदास को कीर्तन और कृष्णदास को मन्दिर के अधिकार की सेवा करने की आज्ञा देकर पुष्टि-मार्गीय सेवा प्रकार आपने स्वयं सेवा करके दर्शाया। भारत की तीर्थ-यात्रा में आपने देखाकि जीवात्मा विषयासक्त अज्ञानी धनासक्तऔर स्वभावतः दुष्ट हैं और श्रीहरि निर्दोषपूर्ण परब्रह्म हैं। इस स्थिति में श्रीकृष्ण के साथ जीवात्मा का सम्बन्ध कैसा स्थापित होवे—जब आपश्री जीवों के अहैतुक श्रेयार्थ अति चिन्तित थे तब श्रावण मास की अमला एकादशी के दिन श्रीहरिने साक्षात् दर्शन देकर ब्रह्म सम्बन्ध मन्त्र द्वारा जीवों को शरण लेने का आदेश दिया।

श्रावणस्यामले पक्षे एकादश्यां महानिशि ।
साक्षाद्भगवता प्रोक्तं तदक्षरशः उच्यते ॥
ब्रह्म सम्बन्ध करणात्सर्वेषां देहजीवयोः ।
सर्वदोषनिवृत्तिर्हि दोषा पंचविधाः स्मृताः ॥

आचार्यश्री श्रीगोवर्धन गिरिधारीका दर्शन और आदेश सुनकर रोमा श्चित और प्रेममग्न हुये। श्रीनाथजी के दर्शन द्वारा आपको रसानुभूति हुई।

उसका वर्णन आपने 'मधुराष्टक' ग्रन्थ में किया है—प्रथम श्लोक द्वारा आपने कहा है—

अधरं मधुरं वदनं मधुरं, नयनं मधुरं हसितं मधुरम् ।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥

आपने निर्गुण प्रेम भक्ति के उपदेश द्वारा हजारों जीवात्माओं को शरण में लिया। आपकी शरण में यवन, बौद्ध पतित, स्त्री, शूद्रादि सभी थे। आपने वैष्णवत्व के सच्चे स्वरूप का दर्शन कराया और 'कृष्णाश्रय ग्रन्थ द्वारा सर्व मार्ग तीर्थ प्रायः नष्ट होने से शरणस्थ समुद्धारक समर्थ श्रीकृष्णकी शरण जाकर अनन्य प्रपत्ति सम्पन्न होनेका उपदेश दिया। भक्ति मार्ग में भगवद् अनुग्रह द्वारा जीवात्मा वरण होता है वहाँ साधन, पुरुषार्थ नहीं किन्तु दीनता ही भगवान की प्रसन्नता प्राप्त करती है। इस मार्ग में लौकिक और वैदिक क्रिया का महत्त्व नहीं है, किन्तु भगवान के सुख का विचार मुख्य है भगवद् प्रेम द्वारा भगवद् भक्ति चरितार्थ होती है, यहाँ देह रक्षण भी देह पुष्टि के लिए नहीं, अपितु भगवद् सेवार्थ ही देह रक्षण होता है।

आपने काशी में पण्डितों के शङ्का समाधान के लिए 'पत्रावलम्बन' ग्रन्थ, श्रीविश्वनाथ महादेव के मन्दिर द्वार पर लगाकर वेदों के पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा का एकत्व और वेद का अपौरुषत्व दर्शाया। भक्ति द्वारा प्रभु प्राप्ति सुगम है आदि विवेचन भी किया—यह 'पत्रावलंबन ग्रन्थ' देखकर हजारों ब्रह्मवाद विरोधी विद्वान ज्ञान मार्ग संन्यासियों के मनका समाधान हुआ तत्पश्चात् असंख्य पण्डित शुद्धाद्वैत तत्त्व ज्ञान श्रवणार्थ आचार्य श्री के पास आते, श्रीमहाप्रभु वल्लभाचार्य के इस ग्रन्थ द्वारा विरोधी तत्त्वों का शमन होने से भगवद् सेवा योग्य शुद्ध सात्विक आनन्द प्रद वातावरण और समय प्राप्त होने लगा।

आचार्य श्री का प्रत्येक विधान भगवदाज्ञानुसार होता था। आप श्री ने भगवद् मिलाप और आज्ञा के अनेक प्रसङ्ग आपने स्वयं लिखे हैं—(१) श्रावण सुदी ११ के दिन भगवान ने प्रकट होकर ब्रह्म सम्बन्ध दीक्षा का आदेश दिया। (२) आप झार देश में पर्यटन कर रहे थे। उस समय प्रभु ने श्रीगोवर्द्धन जाकर श्रीगोवर्द्धन नाथजी के प्राकट्य करने की आज्ञा दी। (३) आप पण्ढरपुर में दर्शनार्थ आये तब विठोबाने आपश्री को विवाह करने का आदेश दिया और पुत्ररूप में स्वयं अवतीर्ण होंगे—ऐसा कहा

(४) आप गङ्गा सागर सङ्गम गये थे तब प्रभु ने आपको भूतल कार्य समाप्त कर गोलोक में आने को कहा। आपको मधुवन में भूतल कार्य समाप्त होने से देह देश के परित्याग की आज्ञा हुई तब आप सम्वत् १५८७ आषाढ़ सुदी ३ को ४२ दिन सन्यस्त धारण कर भगवद् विरह द्वारा काशी में हनुमान घाट पर गङ्गा प्रवाह में हजारों मानवों के समक्ष एक विमल दिव्य ज्योति रूप से अन्तर्धान हुए। आपकी आसुरव्यामोह लीला के समय आपके दो लाल श्रीगोपीनाथ जी और श्रीविट्ठलनाथ जी उपस्थित थे, उन्होंने आचार्य श्री से अन्तिम शिक्षार्थ प्रार्थना की, आचार्य श्री ने मौनव्रत धारण किया था इस कारण से आपने गङ्गा तट पर लिखकर निम्न ३½ श्लोकों द्वारा बोध दिया—

यदा बहिर्मुखा यूयं भविष्यथ कथंचन।
तदा काल प्रवाहस्था देहचित्तादयोऽप्युत॥
सर्वथा भक्षयिष्यंति युष्मानिति मतिर्मम।
न लौकिक प्रभुः कृष्णो मनुते नैव लौकिवम्॥
भावस्तत्रास्मदीय सर्वस्वश्चैहिकश्चसः।
परलोकश्च तेनायं सर्वभावेन सर्वथा॥
सेव्यः स एव गोपीशो विधास्यत्यखिलं हि नः।

तब भगवान ने स्वयं आकाशवाणी द्वारा समर्थन किया—

मयि चेदस्ति विश्वासः श्रीगोपीजनवल्लभे॥
तदा कृतार्था यूयं हि शोचनीयं न कर्हिचित्।
मुक्ति हित्वान्यथा रूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः॥

यह अन्तिम शिक्षा द्वारा आप श्री ने कहा कि जब आप कृष्ण भक्ति से बहिर्मुख होंगे तब सचमुच कालके प्रवाह में बह जाओगे और श्रेय के मार्ग से विचलित हो जाओगे भगवान श्रीकृष्णमें सुदृढ़ प्रेम रखना जीवात्मा का कर्त्तव्य है इसी कारण से श्रीकृष्ण को परम तत्व जान कर उनकी सेवा कथा रूप कर्तव्य से कदापि विचलित न होना।

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य ने ९४ ग्रन्थ रचित किये हैं उसमें से केवल ३५ ग्रन्थ प्राप्त हैं आपके ग्रन्थ के दो विभाग हैं, स्वतन्त्र ग्रन्थ और भाष्य ग्रन्थ आपके प्रधान ग्रन्थों में अणुभाष्य (ब्रह्मसूत्रों पर टीका) तत्वार्थ निबन्ध ग्रन्थ के अन्तर्गत (शास्त्रार्थ प्रकरण, सर्व निर्णय प्रकरण और भागवतार्थ प्रकरण) षोडश ग्रन्थ, पञ्चश्लोकी, न्यासादेश, पुरुषोत्तम सहस्र

शिक्षाश्लोक, श्रुति गीता, परिवृढाष्टक, मधुराष्टक, कृष्णप्रेमामृत, त्रिविध नामावलि आदि ग्रन्थ हैं।

आचार्य श्री ने तीसरे भारत तीर्थाटन पश्चात् पण्ढरपुर में भगवदाज्ञा अनुसार काशी में देवन भट्ट की शील, रूपवती, तपोमूर्ति पुत्री महालक्ष्मी के साथ विवाह किया, आपके विवाह-प्रसङ्ग में विजय नगर के महाराजा कृष्णदेव, दामोदरदास, हरसानी, कृष्णदास मेघन, रजो क्षत्राणी, आपका काका जनार्दन भट्ट, बहन सुभद्रा, भाई रामकृष्ण आदि अनेक भक्त समूह उपस्थित थे।

श्रीवल्लभाचार्य ने प्रयाग के पास अँडैल गाँव में एक कुटी बनाकर गृहस्थाश्रम धर्म स्वीकार किया, वहाँ सम्वत् १५६७ आश्विन बदी १२ के दिन श्रीगोपीनाथ जी का प्राकट्य हुआ। काशी में यवनों का त्रास होने से आचार्य श्री चरणाट के राजा की अति नम्र विनती से चरणाट में विराजे, जहाँ श्रीविट्ठलनाथ जी का सम्वत् १६७२ के पौष बदी ६ को प्राकट्य हुआ। चरणाट के राजा ने श्रीविट्ठलनाथ जी के प्राकट्य के दिन सब ब्राह्मणों की और गरीब जनों की इच्छा पूर्ति कर महोत्सव मनाया था। श्रीविट्ठलनाथजी पुष्टि सम्प्रदायमें आचार्य श्रीकी भाँति पूज्यनीय ही माने जाते हैं। उन्होने पुष्टि सम्प्रदायका बहुत विस्तार किया और उज्ज्वल सेवा परिपाटीकी रचना नन्दालयके समानकी। विट्ठलनाथजी पुष्टि मार्ग में श्रीगोसाईं जी और श्रीप्रभुचरण नाम से विदित हैं, श्रीगुसाईं जी के सात पुत्र भी श्रीगुसाईं जी के समान प्रतापी षड्गुण सम्पन्न और महानुभावी आचार्य थे।

श्रीवल्लभाचार्य जी का गृहस्थाश्रम अत्यन्त सादा और सरल था अनेक राजा महाराजा आपके शिष्य हुए थे, किन्तु आपश्री परिग्रह को पाप समझते—आपश्री पवित्र ब्राह्मण धर्मानुसार अपरिग्रही होकर विद्वत्ता युक्त आदर्श तेजस्वी जीवन व्यतीत करते आपका गृहस्थाश्रम अकिंचन होनेसे जीवन निर्वाहके कठिन समय में भी धैर्यपूर्वक भगवद्इच्छा समझकर व्यतीत करते, आपका स्वरूप भगवद् विरहात्मक प्रेमयुक्त राससीमन्तिओं के भाव से परिपूर्ण था। आप साक्षात् भगवदाज्ञा सदृश जीवन व्यतीत करते।

भक्ति सम्प्रदाय के सुशीतल आनन्दप्रद अखण्ड प्रकाशित व्योम के श्रीमहाप्रभु जी पूर्णचन्द्र के समान थे, जब आपके महानुभावी परम भक्त-कवि सूरदास, परमानन्ददास, कुंभनदास, कृष्णदास आदि भक्ति-व्योम के

प्रकाशमान उडुगण थे। व्रज-साहित्य के सर्वोत्कर्ष विकास का महान कार्य इन्हीं भक्तकवि-रत्नों के द्वारा हुआ है।

अडेल में आपश्री के दर्शनार्थ श्रीशङ्कराचार्य मधुसूदन सरस्वती श्रीचैतन्य महाप्रभु, केशव भट्ट काश्मीरी, महाभक्त-कवि सूरदास जी, पद्मनाभदास जी आदि महापुरुष आते थे और परस्पर भगवद् चर्चा द्वारा रसार्द्र बनते थे।

आप श्री अष्टाक्षर मन्त्र दे कर नाममन्त्र के दीक्षा संस्कार द्वारा पुष्टिमार्गीय वैष्णव बनाते। वैष्णव को ब्रह्मसम्बन्ध मन्त्र पुष्टिमार्गीय दीक्षा संस्कार द्वारा सेवाधिकार प्रदान करते। ब्रह्मसम्बन्ध को पुष्टिमार्ग में आत्म निवेदन भी कहते हैं। ब्रह्मसम्बन्ध दीक्षा से वैष्णव सर्वस्व समर्पण करके श्रीहरि का दासत्व स्वीकार करता है और आत्म निवेदन की स्मृति बनाकर प्रपंच की विस्मृति पूर्वक भगवदासक्त जीवन व्यतीत करता है। **आत्म निवेदकाः हि भगवद् भजनार्हाः नेतरे।** ब्रह्मसम्बन्ध लेने से पूर्व संचित दोषापयन होता है और गुणाधानार्थ सेवा में प्रवृत्ति होती है। भगवद् सेवा की अवधि गुणोत्कर्ष है और दोषों की अवधि भगवद् अवज्ञा है। सेव्य की प्रीतिपूर्वक सेवा ही भक्तियोग है। **'मत्सेवनं इति सेवैवानन्दरूपा भक्तियोग इति तस्यैव नाम।'** परमानन्द प्रीत्यर्थ प्रीतिपूर्वक सेवा भजन कीर्तन और तादृशी वैष्णव सहचारिता एवं सत्संग आदि परम आवश्यक है। ब्रह्मसम्बन्ध के बाद वैष्णव को अन्याश्रय करना प्रसमर्पित वस्तु का ग्रहण, दुःसंग करना और मिथ्यालाप वर्ज्य है। इस मूलाधार पर ब्रह्मसम्बन्ध द्वारा फलित भगवद् साक्षात्कार निर्भर है।

पुष्टिमार्ग में आचार्यश्री और गुसांईजी दोनों ही गुरुकोटि में माने जाते हैं। श्रीगुसांईजी के वंशज गोस्वामी बालक गुरुद्वार हैं। ब्रह्मसम्बन्ध दीक्षा का अधिकार केवल आचार्यश्री के वंशज बालक का है।

पुष्टिमार्ग में आचार्यश्री को भगवद् वदनावतार स्वरूप मानते हैं। आपश्री श्रीकृष्ण के स्वरूप के ज्ञानदाता गुरु हैं। भक्तिमार्ग में गुरु अनुग्रह के अभाव में ठाकुरजी जीव को अङ्गीकार नहीं करते और आत्यन्तिक श्रेय प्राप्ति नहीं होती, अनु+ग्रह शब्द द्वारा प्रथम गुरु का अनुग्रह तत्पश्चात् भगवद् स्वीकृति या शरण सिद्धि होती है। भक्ति दृढ़ तब होती है जब साधक गुरु की शरण में जाकर गुरु प्रसाद पाता है—अनुग्रह द्वारा दीन हीन और संसार दग्ध जीवात्मा भगवद् रस द्वारा भक्ति प्लावित होता है।

'पोषणं तदनुग्रह'—यह भागवत का कथन है। प्रभु प्रत्यक्ष का विषय नहीं है, कर्म द्वारा ज्ञात नहीं होते हैं, किन्तु भगवान स्वयं-प्रकाश हैं, कृपा साध्य हैं, इस कारण गुरु कृपा भगवद्स्वरूप के प्रत्यक्ष अनुभवार्थ नितान्त आवश्यक है। गुरु सेवा द्वारा कृपान्वित भक्त पर भगवद् कृपा बिना विलंब अवतीर्ण होती है और भगवद् स्मृति लब्ध होती है। "तत् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। उपदेक्ष्यंति ते ज्ञानं ज्ञानिनः तत्त्वदर्शिनः।' अर्जुन ने भी भगवान के शरण में जाकर भगवद् कृपा द्वारा--'नष्टो मोहः स्मृति-र्लब्धा करिष्ये वचनं तव' कहा था। गुरु कृपा द्वारा शिष्य में शक्तिपात होता है, यह वैज्ञानिक सत्य है। जीवात्मा पर गुरु अनुग्रहपूर्वक जब भाव का दान करते हैं, तब स्नेह भक्ति प्राप्त होती है। गुरु-कृपायुक्त शिष्य निर्भय होता है, यदि भगवान कभी भक्त पर रुष्ट हो जावे तो स्वयं गुरु रक्षण करते हैं, किन्तु जब गुरु रुष्ट होवे तो हरि भी रक्षण नहीं कर सकते। 'हरौ रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन।' इस सिद्धान्त के अनुसार बिना गुरु शिष्य निरालम्ब है। पुष्टिमार्ग में ठाकुरजी श्रीआचार्यजी और श्रीगुसांईजी के वंश में हैं, इस कारण से भक्त की सेवादि इन्हीं के कहने से स्वीकृत कर नित्य कृपादान करते हैं। वस्तुतः गुरु सेवा और भगवत् भक्ति एक ही वस्तु है। जब तक गुरु में साक्षात् भगवद् बुद्धि का अभाव रहता है तभी तक भगवद् सेवा की पृथक् आवश्यकता होती है। आचार्य श्री के अनन्य सेवक दामोदरदास हरसानी, कृष्णदास मेघन आदि को अपने गुरु में पूर्ण पुरुषोत्तम स्वरूप की अनुभूति हुई थी। इस कारण पृथक भगवत् सेवा की कोई आवश्यकता अनन्य भक्तों को विदित न हुई। वे आपश्री की नित्य अन्तरङ्ग परिचर्या द्वारा भगवद् सेवा रसानुभूति पान करते थे। गुरु के वाक्य आप्त होते हैं, शिष्य को गुरु वाक्य में संशय करने से कल्याण प्राप्ति नहीं होती। 'संशयात्मा विनश्यति' श्रीसूरदासजी ने स्वयं अन्तिम समय गाया है कि मेरी श्रीठाकुरजी और गुरु में एक ही भाव दृष्टि है, कोई भेदभाव नहीं है। इसलिये गाया--

दृढ़ इन चरनन केरो भरोसो, दृढ इन चरनन केरो।
श्रीवल्लभ नखचंद्रछटा बिन, सब जग मांहि अंधेरो॥
साधन और नाहिं या कलि में, जासो होत निवेरो।
सूर कहा कहे दुविध आंधरो, विना मोलको चेरो॥

श्रीमद्वल्लभाचार्य जी अपने शुद्धाद्वैत वाद के समर्थन में ब्रह्मसूत्र, उपनिषद्, गीता और श्रीमद्भागवत को प्रमाणरूप मानते हैं।

आपश्री द्वारा स्थापित सम्प्रदाय को शुद्धाद्वैत कहते हैं। वस्तुतः आपश्री ने वास्तविक रूप से ब्रह्मवाद स्थापित किया है। श्रीमद्शङ्कराचार्य के अद्वैतवाद में प्रतिपादित सगुण ब्रह्मके माहात्म्य का खण्डन किया है। उनके मतानुसार ईश्वर भी सगुण और मायोपाधित है। शुद्ध ब्रह्म नहीं है। आचार्यश्री श्रीमद् भागवत प्रतिपादित भगवान श्रीकृष्ण को ही परब्रह्म पूर्ण पुरुषोत्तम, वेदों का 'रसो वै सः' स्वरूप मानते हैं। भगवान श्रीकृष्ण सर्वज्ञ सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान् अनन्त ब्रह्माण्ड के आश्रय, उत्पत्ति, स्थिति और लय के हेतुरूप हैं। इतना ही नहीं श्रीकृष्ण—करुण, कृपालु, सुहृद, दिव्यगुणालंकृत अप्राकृत धर्मों के परम अधिष्ठान भी हैं। ब्रह्म, विरुद्ध धर्माश्रयी होने से बिना पाद चलता है, बिना चक्षु देखता है और बिना हस्त कार्य भी करता है। वह ब्रह्म निराकार भी है, साकार भी है, निर्गुण भी है और सगुण भी है। ब्रह्माण्ड में व्याप्त वह परमाणु में भी पूर्णरूप से व्याप्त है। प्रभु का धर्मी स्वरूप सर्वगुणरूप है। ब्रह्म ही भगवान और परमात्मा है दोनों पृथक् नहीं हैं। ब्रह्म मायाहीन नहीं है, किन्तु माया ब्रह्माधीन है। ब्रह्म केवल नहीं किन्तु शुद्ध अद्वैत सर्वरूप सर्वाधिष्ठान और प्राणीमात्र के लिये ज्ञेय-ध्येय और सेव्य है।

ब्रह्म 'रसो वै सः' होने से आनन्दमात्र करपादमुखोदरादि मधुरातिमधुर रसप्रचुर रसपरिपूर्ण रसाब्धि है। ब्रह्म में नियत (सीमित) धर्म स्वीकार करने से पूर्ण स्वरूप नहीं रहता। ब्रह्म में असीमित धर्म स्वीकार करने से ही ब्रह्म सर्वधर्मरूप सर्वगुणाधिष्ठान पूर्णस्वरूप होता है। इस कारण जीव और जगत ब्रह्म का कार्य है। श्रीमद् भागवत में **'यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद् यद् यथा यदा'**। वाक्य द्वारा ब्रह्म को स्वतन्त्र कहकर ब्रह्मवाद में सत्कार्यवाद ही इष्ट है, यह प्रतिपादन किया है।

श्रीमद् वल्लभाचार्य जी "प्रकाशाश्रयवद्वा तेजस्वात्" इस श्रुति वाक्य के द्वारा ब्रह्म के विरुद्ध धर्माश्रय धर्मको अङ्गीकार करते हैं। वह ब्रह्म का माहात्म्य दर्शक है—**"यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह"** वाक्य द्वारा धर्म का निषेध कर पुनः **"आनन्द ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन"** वचन द्वारा धर्म का समर्थन भी करते हैं। इस कारण से ब्रह्म प्राकृत धर्म रहित और निधर्मक होने पर भी सधर्मक, निराकार, साकार, निर्गुण होते हुए भी सगुणादि विरुद्धधर्माश्रय-युक्त है। परब्रह्म परमात्मा सदा एकरस शुद्ध है। बालक होते हुए भी रसेश रसिक शिरोमणि है। सर्वतन्त्र स्वतंत्र होने पर भी भक्ताधीन है। निरपेक्ष होने पर भी सापेक्ष है। सर्वज्ञ होते

हुए भी महामुग्ध है। निर्भय ब्रह्म को माता यशोदा डाटती भी है और परब्रह्म श्रीकृष्ण अश्रुपूर्ण होकर माता से भयभीत भी दीखते हैं।

आप्तकाम पूर्णकाम ब्रह्म में जगदादि रचना से अपूर्णता और सकामता दोष प्राप्त नहीं होता। परब्रह्म परमात्मा सर्व भावेन समर्थ सर्वकर्ता होने पर भी अविकृत रहते हैं। इसी कारण ब्रह्म का अच्युत नाम है। परब्रह्म लीलार्थ 'एकोऽहं बहु स्याम, स एकाकी न रमते, स द्वितीयमैच्छत्' श्रुति वाक्यानुसार सहज क्रीड़ा करता है 'लोकवत्तु लीला कैवल्यम्' होते हुए भी परब्रह्म के स्वरूप में कोई क्षति सम्भव नहीं।

ब्रह्म में विषमता या कठोरता सम्भव नहीं है, वेदान्त की भाषा में ब्रह्म में वैषम्य नैर्गुण्य पने का दोष नहीं है, ब्रह्म दयाहीन कठोर नहीं है, किन्तु परम कृपालु और हितैषी है। स्वमाहात्म्य दर्शनार्थ विविध भाँति का जगत ब्रह्म ने रचा है। भक्तों को यह जगत ब्रह्म का क्रीड़ाभांड दीखता है।

ब्रह्म और जगत का ऐक्य है, 'ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या' वाक्य आप्त नहीं है, जगत माया रहित भगवद् कृति है। ब्रह्म के सदंश से जगत की रचना हुई है।

जीवात्मा मिथ्या नहीं किन्तु ब्रह्म का चिदंश है। जीवात्मा में आनन्दांश तिरोहित होने से दीन हीन अज्ञानी बना है।

जीवात्मा में अंतर्यामीरूप से जो विराजमान है। वह आध्यात्मिक ब्रह्म है वह गणितानन्द स्वरूप है और पूर्णानन्द स्वरूप पुरुषोत्तम का अधिष्ठान है और मूल पुरुष से अविच्छिन्न है। ज्ञानीजन भगवान के चरणारविन्द का ध्यान करके अक्षर ब्रह्म के प्रकाश स्वरूप में लीन होते हैं। 'ते प्राप्नुवन्ति मामेव' श्रीमद् गीता का कथन है।

ब्रह्म को जगत रचना में किसी साधन की जरूरत नहीं है और कोई श्रम भी उसे नहीं होता। ब्रह्म नैसर्गिक सुन्दर दिव्यातिदिव्य पूर्ण होने से इसकी सर्व कृति भी पूर्ण स्वरूप है।

श्रीवल्लभाचार्य जो प्रतिपादित सिद्धान्त यहाँ संक्षिप्त में कहा है। अब शुद्धाद्वैत के निर्गुणमार्ग की विशेष चर्चा करेंगे।

आचार्य श्री ने प्रतिपादित किया है कि जगत सत्य है, असत्य और क्षणिक नहीं है। जगत् ब्रह्मरूप है और ब्रह्म का अविकृत आधिभौतिक स्वरूप है। जगत् ब्रह्म का कार्य है, अतः उसकी कृति होने के कारण सत्य है, जैसा कि श्रुति का कथन है—

'प्रपंचो भगवत् कार्यस्तद्रूपो मायया भवत् ।'

भगवान् स्वयं अपनी सत् नाम की सत्ता से अनन्त ब्रह्माण्ड की रचना करता है। ब्रह्म स्वयं जगत् रचना का समवायी, निमित्त और उपादान कारण है, वह स्वयं प्रजापति है और स्वयं ही मृत्तिका और घट रूप भी है।

आचार्यश्री के अनुसार जगत् प्राकृत नहीं है और परमाणु जन्य भी नहीं है तथा न ब्रह्म का विवर्त परिणाम है। अदृष्ट और असत् से भी उसकी उत्पत्ति नहीं है। जो कुछ दृश्य-अदृश्य, जड़-चेतन, घट-पटादि हैं वह सब ब्रह्म रूप हैं। ब्रह्म अनन्त, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और सर्व शक्तिमान है। स्वेच्छा से सर्वरूप धारण करने में समर्थ है। भगवान् की माया भ्रम-रूप नहीं है, किन्तु भगवान् की सर्वव्यापक, सर्व भवन समर्थ रूपा शक्ति है—

माया हि भगवतः शक्तिः सर्व भवन सामर्थ्य रूपा।

साधारणतया लोग प्रपंच जगत् और संसार शब्द को एक ही अर्थ में लेते हैं किन्तु यह समझना ठीक नहीं है क्योंकि जगत् ब्रह्म कृत है और संसार जीव कृत है। अविद्या के कारण जीवात्मा के समक्ष संसार का अस्तित्व आता है और यह अविद्या माया से उत्पन्न भगवान की शक्ति है इसका सम्बन्ध जीवात्मा के साथ है जैसा कि कहा गया है—

विद्याऽविद्या हरेः शक्तिर्मायैव विनिर्मितेति जीवस्यैव नाऽन्यस्य।

माया का आविर्भाव और तिरोभाव सर्व शक्तिमान भगवान् की स्वेच्छा पर निर्भर है। माया जगत् का कारण है और अविद्या संसार का हेतुरूप है। अविद्या जीवगत अहंता-ममता मूलक उपाधियों की एकमात्र जननी है। वह पंचपर्वा अविद्या देहाध्यास, इन्द्रियाध्यास, प्राणाध्यास, अन्तः-करणाध्यास और स्वरूपज्ञान में विभक्त है। अविद्या के कारण जीवात्मा अपने स्वरूप को भूल जाता है अतः वह नित्य भगवत् सम्बन्ध से दूर हो जाता है। अविद्या के कारण ही जीवात्मा जगत् के पदार्थों को अपना मानकर 'स्व' उपभोग्य समझता है। वह समझता है कि अपने पुरुषार्थ के बल पर उसे सब कुछ उपलब्ध हुआ है और वही जगत् के पदार्थों का स्वामी तथा कर्त्ता एवं भोक्ता है।

वस्तुतः पदार्थ मात्र के एकमात्र स्वामी, भोक्ता और कर्त्ता भगवान् ही हैं। भगवान् ने स्वक्रीडार्थ जगत् उत्पन्न कर कौतुकवश विविध नाम

रूपादि युक्त सृष्टि रची है। जगत् की रचना में विविध प्रकार की लीला सम्पन्नता है। जिसे भगवान् ने अनायास कुतूहलवश स्व-लीलार्थ उत्पन्न किया है। किन्तु जीवात्मा स्वगत अविद्या के कारण इन पदार्थों को स्वयं के लिये मान लेता है, इसी कारण संसार अस्तित्व में आता है। जीवात्मा किसी को अपना मित्र, किसी को शत्रु, किसी स्थान को अपना घर और किसी को पराया ऐसा मानकर अपना एक विशेष संसार बना लेता है। इसके मूल में जीवगत 'अहंता एवं ममता' ही है। अविद्या का नाश होने पर इस कल्पित संसार का अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है। तब उसे भान होता है कि वह सेवक है, भगवान उसका स्वामी है। इसी को 'स्मृति लब्ध' कहते हैं—

नष्टो मोहः स्मृति र्लब्धा, करिष्ये वचनं तव।

जब सब कुछ भगवत् कृत और भगवत् भोग्य है—ऐसा अनुभव जीवात्मा को होता है तब संसार का लय या विनाश होता है, किन्तु जगत् का लय कभी भी नहीं होता है। यह भगवत् कृति यथा स्थिति रहती है।

संसार की उत्पत्ति और लय होता है, किन्तु जगत् का आविर्भाव और तिरोभाव भगवान् में ही होता है।

संसारस्य लयौ मुक्तौ न प्रपंचस्य कर्हिचित्।

जगत् की तिरोभाव अवस्था में भगवान् अन्तर्लीला करते हैं। जगत् के आविर्भाव होने पर ही संसार की उत्पत्ति होती है, जगत् के तिरोभाव होने पर संसार का भी लय हो जाता है।

जगत ब्रह्म का कार्य लक्षण है, कार्य लक्षण से ब्रह्म के सम्पूर्ण स्वरूप की प्रतीति नहीं हो सकती, इस कारण ब्रह्म के स्वरूप लक्षण का बोधार्थ ब्रह्म आकाश की तरह अखण्ड और अनन्त है, ऐसा श्रुतियों का कथन है। '**सर्वतः पाणिपादान्त एव सर्वतः व्याप्तः**'। ब्रह्म निराकार होने पर भी सर्वतः पाणिपादान्त अवयव-युक्त होने से साकार है। ब्रह्म के अवयव अप्राकृत हैं—अर्थात् रस, रक्त, मांस मेद, अस्थि, मज्जा युक्त नहीं हैं। किन्तु '**आनन्दमात्र करपादमुखोदरादि**' है। ब्रह्म का श्रीविग्रह चिन्मय और आनन्दमय है। श्रीब्रह्म संहिता के पञ्चम अध्याय के श्रीगोविन्द स्तोत्र में कहा है—

अङ्गानि यस्य सकलेन्द्रिय वृत्तिमन्ति
पश्यन्ति पान्ति कलयन्ति चिरं जगन्ति।

आनन्द चिन्मय सदुज्ज्वल विग्रहस्य
गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि ॥ ३१ ॥

ब्रह्म निर्गुण है, कारण कि प्राकृत धर्म रहित है। ब्रह्म सगुण है कारण कि वह लोकोत्तर दिव्य अलौकिक धर्म युक्त है। ब्रह्म विरुद्ध-धर्माश्रयी होने से सगुण और निर्गुण भी है। ब्रह्म ही आधार और आधेय भी है। श्रुतियाँ ब्रह्म के विरुद्ध धर्माश्रय स्वरूप को **'उभय व्यपदेशात् अहि कुण्डलीवत्'** सूत्र द्वारा उपदेश करती हैं। ब्रह्म बिना पाद चलता है, बिना चक्षु देखता है, बिना श्रवण सुनता है, आदि **'अपाणिपादो जवनो ग्रहीता'**। ब्रह्म अणु से भी लघु है, वह परिणामातीत है, वृक्ष के पत्र, पुष्प, फल आदि के पारस्परिक भेद को स्वगत भेद कहते हैं। एक ही जाति के अनेक वृक्षों के पारस्परिक भेद को जातीय भेद कहते हैं और भिन्न-भिन्न वृक्षों के पारस्परिक भेद को विजातीय भेद कहते हैं। इससे भिन्न ब्रह्म तीन प्रकार के भेद से रहित है, यद्यपि चेतन पदार्थ जड़ पदार्थ से भिन्न प्रतीत होता है तदपि वस्तुतः यह एक ही स्वरूप है। एक और अद्वितीय ब्रह्म के दो स्वरूप हैं अर्थात् ब्रह्म का द्वैत स्वरूप दृश्यमान होने पर भी एक और अद्वय है, **"सजातीय विजातीय स्वगत द्वैत वर्जितम्"** ब्रह्म है।

ब्रह्म जीव और जगत—

ब्रह्म सत् चित् और आनन्द स्वरूप है, जगत का आविर्भाव ब्रह्म के सत् अंश से होता है, चित् अंश से जीवात्मा की और आनन्द अंश से अन्तर्यामी की उत्पत्ति होती है। ब्रह्म के चित् अंश से अग्नि के विस्फुलिङ्ग के सदृश जीव समूह का व्युच्चरण—उद्गम होता है। जीवात्मा ब्रह्म का अंश है, वह अणु मात्र **"आराग्रमात्रो ह्यपरोऽपि दृष्टम्"** होने पर भी ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त होने पर व्यापक बनता है**"व्यापकत्व श्रुतिस्तस्य भगवंत्वेन युज्यते"**जीवात्मा चैतन्य स्वरूप होने से उसकी चैतन्य शक्ति सम्पूर्ण देह में व्याप्त है, **"गन्धवत् व्यतिरेकवान्"** श्रुति कहती है।

"श्री शङ्कराचार्य के मतानुसार आत्मा ब्रह्म का अंश नहीं, किन्तु ब्रह्म ही है। ब्रह्म माया से आच्छन्न रहता है,ब्रह्म का मायागत प्रतिबिम्ब-'ईश्वर', और अविद्यागत प्रतिबिम्ब को जीवात्मा कहते हैं। इस कारण जीवात्मा ब्रह्म का आभास मात्र है," किन्तु श्री वल्लभाचार्य के मतानुसार जीवात्मा ब्रह्म का अंश है जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, इस कारण ब्रह्म से—अव्याप्त कोई भी स्थल ब्रह्मांड में नहीं है, जहाँ ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पड़ सके।

अर्थात् कोई भी व्यक्ति वस्तु विशेष से चारों ओर आच्छादित होने पर कदापि प्रतिबिम्बित नहीं हो सकता। **"माया जवनिकाच्छन्नं नान्यथा प्रतिबिम्बते"** अतः यह कहना कि जीवात्मा ब्रह्म का आभास मात्र है, उचित नहीं। अपितु ब्रह्म का चिदंश ही है। वस्तुतः ब्रह्म का आनन्दांश तिरोहित होने से जीव को जीवत्व प्रतीत होता है, ब्रह्म का आनन्दांश जीवात्मा में आविर्भाव होते ही वह भी ब्रह्मवत् हो जाता है, जीव का आनन्दांश स्व-अविद्या कृत संसार में प्रवेश होने पर तिरोहित हो जाता है। फिर भी जीवात्मा में आनन्दांश अप्रकट रूप से विद्यमान रहता ही है, जैसे बाल्य अवस्था का 'पुंस्त्व' युवावस्था प्राप्त होने पर अभिव्यक्त होता है **"पुंस्त्वादिवत् तस्य सतोऽभिव्यक्ति योगात्"**—अणु भाष्य।

सदा सर्वदा भगवद् सेवा तथा कथा श्रवण करने से भगवद् भाव का उद्गम होने पर भगवद् अनुग्रह द्वारा जीवात्मा में आनन्द गुण का स्वतः आविर्भाव होता है, और वह ब्रह्मवत् स्थिति को प्राप्त कर लेता है। ब्रह्मवत् दशा को प्राप्त जीव के सम्बन्ध में **"तत् त्वम् असि"** आदि वाक्यों के कहने का श्रुतियों का यही तात्पर्य है। श्रुतियों का यह कथन कि जीवात्मा स्वयं ही ब्रह्म है—इस हेतु से नहीं है। अपितु ब्रह्म सादृश्य में ही तात्पर्य है।

निर्गुण भक्ति द्वारा अहंता, ममतात्मक संसार का लय अवश्य होता है और ज्ञान प्राप्ति द्वारा विवेक अर्थात् वस्तु का यथार्थ बोध तो होता है, किन्तु भगवद् प्राप्ति नहीं हो सकती। तदपि कर्म की अपेक्षा ज्ञान उत्तम है, क्योंकि ज्ञान द्वारा तेजस्विता आती है, किन्तु ज्ञानी भक्तियुक्त होने पर ही परम श्रेष्ठ गति को प्राप्त कर सकता है।

"ज्ञानी चेत् भजेत् कृष्णं तस्माद्राधिकः परम्"

शांकर मतानुसार ज्ञान ही मोक्ष सिद्धि का परम साधन है परन्तु श्री वल्लभाचार्य भक्ति विहीन ज्ञान को निरर्थक मायारूप मानते हैं,केवल--ज्ञान ब्रह्म भाव की प्राप्ति में असमर्थ है—**"अहं ब्रह्माऽस्मि"** की स्थिरता से अज्ञान जनक 'अहं' का सम्पूर्ण मूलोच्छेद असम्भव है और अहं की नितान्त निवृत्ति होने पर ही परम श्रेय का अरुणोदय होता है। भक्ति विहीन ज्ञान तो माया का स्वरूप ही है। माया का कार्य मोह उत्पन्न करना है, इसलिये अहङ्कार की आत्यन्तिक निवृत्ति के लिये ज्ञान का आश्रय करना कदापि योग्य नहीं, जबतक अहंता ममतात्मक माया का संपूर्ण मूलोच्छेद नहीं होता,तबतक संसाररूपी अनर्थ कदापि उपराम नहीं पा सकता। शास्त्र में बहुत से दृष्टान्त आते हैं, जहाँ ज्ञान प्राप्ति के बाद भी ज्ञानी माया से मोहित हुआ है, इस कारण

अनर्थ निवृत्ति के लिये भक्ति ही एक मात्र साधन है। गीता में इस बात की स्पष्ट घोषणा की गई है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥—गी०अ०, ७, १४

ज्ञान की उपयोगिता मात्र मन की शान्ति को उपलब्धि के लिये है, संसार निवृत्ति के लिये नहीं है, स्वतन्त्र भक्ति ही जीवन में सेवोपयोगी और अलौकिक सामर्थ्य प्रदान करती है तथा शरीर को लोला मण्डल का एक अविभाज्य अङ्ग बनाती है। यह भागवती तनु भगवद् सेवा और कथा-कीर्तन श्रवण द्वारा ही सम्भावित है। कारण कि निरन्तर स्नेह युक्त भगवत् सेवा और भजन से ही इन्द्रियाध्यास आदि देह सुख साधनों से उपरति होती है। शारीरिक सेवा द्वारा जीवात्मा अपने इष्ट के सुखार्थ "तत्सुख सुखीत्व" की भावना से युक्त होकर स्वरूपासक्त होता है। तब वह इन्द्रिय-विषयक भोग को त्याग कर शुद्ध सात्विक आनन्द स्वरूप की सेवा में रत होता है, तत्पश्चात् उसका निर्वासनिक मन एक लोकोत्तर विशिष्ट प्रकार की अन्तः करण की प्रसन्नता प्राप्त करता है। ऐसे भक्त की मुख मुद्रा अत्यन्त निर्मल शान्त और प्रसन्न होती है। नवीन तनुत्व द्वारा उसमें से एक प्रकार की आनन्द की तन्मात्रा प्रसारित होती है, और जो भी व्यक्ति उसके संसर्ग में आता है उसे भी वह अपने आनन्द रस से द्रवित कर देता है। ऐसे जीवन् मुक्त, सदा प्रसन्नात्मा भक्त के समक्ष विषय-लालुप संसारी जीव नत मस्तक होकर शरण ग्रहण करते हैं।

श्री वल्लभाचार्यजी ने जीवात्मा के आत्यंतिक कल्याण के लिये प्रेम-भक्ति मार्ग की स्थापना की है। वेदों में पूर्व-काण्ड कर्ममार्ग का। उत्तर-कांड ज्ञान मार्ग का और शांडिल्य नारदादि भक्ति सूत्र भक्ति तत्व का अति सूक्ष्म वर्णन करते हैं। भारत के इतिहास में ब्रह्म सूत्र का काल मानवकी बौद्धिक, आचारिक और सांस्कृतिक विकास परम्परा का सीमा चिह्न माना जाता है। समय के प्रभाव से धार्मिक राजनैतिक और सामाजिक परिवर्तन होने पर महापुरुषों ने अपनी विशेष दार्शनिक विचार धारा द्वारा मानव कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है। श्रीशङ्कराचार्य, श्रीरामानुजाचार्य, श्रीमध्वाचार्य श्री निम्बार्काचार्य और श्री वल्लभाचार्य ने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिख कर अपनी प्रगाढ़ विद्वत्ता और स्वानुभव युक्त ब्रह्म का दर्शन एवं परिचय कराया है। श्रीशङ्कराचार्य ज्ञान मार्ग के आचार्य हैं, किन्तु अन्य चार महापुरुष भक्ति मार्ग के प्रवर्त्तक आचार्य माने जाते हैं।

श्रीमद् वल्लभाचार्य ने अपनी अपूर्व मौलिक शैली द्वारा विशुद्ध दार्शनिक विचार एवं विशुद्ध निर्गुण भक्ति सुलभ, निगूढ़ भावना सम्पन्न भक्ति-मार्ग का उपदेश किया है। उन्होंने दिव्यगुण युक्त भक्ति के रमणीय निगूढ़ स्वरूप का बोध, तथा मर्यादा युक्त भक्ति की सङ्कीर्णता का विवेचन और 'स्वतन्त्र' भक्ति के परम श्रेष्ठ मङ्गलकारी तत्व का उपदेश किया है। उनके द्वारा उपदिष्ट भक्ति मार्ग की दार्शनिकता, कर्म और ज्ञान मार्ग की दार्शनिकता से भिन्न है और अन्य भक्ति सम्प्रदायों से भी कुछ विलक्षण होने के कारण उन्होंने अपने मार्ग को 'पुष्टि सम्प्रदाय' का नाम दिया है।

इस दिव्यगुणयुक्त भक्ति का सेव्य इष्टदेव निर्दोष, पूर्ण विग्रह यशोदोत्संग लालित सारस्वत कल्प के भगवान श्रीकृष्ण ही हैं। भगवान श्रीकृष्ण सर्वतन्त्र स्वतन्त्र सब के आत्मा, सर्वदिव्यगुणसम्पन्न मधुरातिमधुर सर्वाश्रय होने पर भी गुणाधीन नहीं हैं, किन्तु प्राकृत धर्मरहित 'निर्गुण' परम ब्रह्म हैं। आनन्दमय दिव्य विग्रह होने पर भी वे प्राकृत अवयव रहित होने के कारण ही निराकार हैं। अतः पूर्ण ब्रह्म निर्दोष तथा पूर्णविग्रह भगवान श्रीकृष्ण ही भगवान पद वाच्य हैं। **'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयं'** श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई भी देव नहीं है। जीवात्मा में आनन्द तिरोहित है, जगत चिदानन्द तिरोहित जड़ है, अक्षर ब्रह्म सत्-चित् आनन्दरूप होने पर भी गणितानन्द है, इस कारण क्षराक्षर से अतीत पुराण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ही एकमात्र पुष्टिसम्प्रदाय के इष्टदेव हैं। वह स्वयं निर्दोष, पूर्ण विग्रह तथा आनन्दकरपादमात्रादि पूर्ण-विग्रह स्वरूप परब्रह्म हैं, कृष्णाश्रय ग्रंथ में स्पष्ट रूप से कहा है—

प्राकृताः सकला देवा गणितानंदकं बृहत्।
पूर्णानन्दो हरिस्तस्मात् कृष्ण एव गतिर्मम॥

ब्रह्मसंहिता में भी अध्याय ५ के प्रथम श्लोक में कहा है—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
अनादिरादि गोविन्दः सर्व कारण कारणम्॥

श्रीकृष्ण स्वरूप की सेवा को पुष्टिमार्ग में भक्ति कहते हैं, अन्य देव की सेवा भक्ति नहीं कहाती है। कारण 'मन्निष्ठं निर्गुणं स्मृतम्' न्याय से भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति ही निर्गुण भक्ति है, अन्य देव की उपासना सगुण भक्ति है। 'सगुणः साऽन्यसेवया' अन्य स्वरूपों में भक्तों को पूर्ण फल देने की उतनी सामर्थ्य भी नहीं है, मोक्ष प्राप्ति के लिये किसी भी भगवद्

स्वरूप की उपासना हो सकती है, उससे प्राप्त मोक्ष को सगुण मोक्ष कहा जाता है, किन्तु निर्गुण मोक्ष प्राप्ति के लिये अनादि आदि गोविन्द नन्द-नन्दन यशोदोत्संग लालित मुरली मनोहर मनमोहन श्रीकृष्ण की भक्ति ही अपेक्षित है, उस निर्गुण मोक्ष को ही सायुज्य मुक्ति का नाम श्रीवल्लभाचार्य ने दिया है। यहीं पर जीवात्मा को लीलामण्डल का एक अविभाज्य सेवाधिकार प्राप्त होता है, अन्य भगवद् स्वरूप की उपासना द्वारा प्राप्त मोक्ष आत्यन्तिक दुःख की निवृत्ति तो करता है, किन्तु वहाँ परमानन्द की उपलब्धि नहीं होती, यही तारतम्य है।

वस्तुतः वेदोक्त कर्ममार्ग कर्म प्रधान है, वहाँ नित्य नैमित्तिक कर्म द्वारा सूर्य, अग्नि आदि देव की अर्चना होती है। इसीलिये वेदोक्त कर्म-मार्ग कर्म प्रधान है, देवता प्रधान नहीं है, वहाँ देवता केवल कर्म के अंशभूत हैं, अंशीभूत कर्म को भगवान का अंश रूप समझकर कर्मांगभूत देवता की अर्चना करने में दोष नहीं है। कर्ममार्ग की अर्चना को पूजा कहते हैं, कर्ममार्ग पूजा का क्षेत्र होने से भक्ति तत्त्व नहीं कहा जा सकता। **'पूजायाः कर्ममार्गान्तः पातित्वात् न भक्तितत्त्वम्'** श्रीवल्लभ सम्प्रदाय इसी कारण से पूजामार्ग से विशिष्ट है, पूजामार्ग में देवता के प्रसन्नतार्थ प्रधान सिद्ध मन्त्र जप आदि अपेक्षित अर्चन के प्रकार को 'उपासना' कहते हैं। जहाँ मन्त्र की प्रधानता है उसे श्रीआचार्य 'उपासना' मार्ग में अन्याश्रय रूप होने से दोषावह मानते हैं। उससे परमानन्द की उपलब्धि नहीं होती। पुष्टि भक्ति का मार्ग इसी कारण उपासना मार्ग से नितान्त भिन्न है।

पूजा के मार्ग में साधन और फल भिन्न-भिन्न हैं। पूजा का आधार शास्त्रोक्त विधि है, किन्तु सेवा स्नेह प्रधान है। भगवान श्रीकृष्ण की अर्चना मर्यादा मार्ग में उपलब्ध है, अन्य किसी देव या विभूति की अर्चना को पुष्टि सम्प्रदाय में अन्याश्रय रूप माना है। पुष्टिमार्ग की सेवा में साधन और फल की एकवत्ता है 'भक्त्या संजायते भक्तिः' श्रीकृष्ण की सेवा, भक्ति और स्नेहरूपा है। 'स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तः'। वस्तुतः स्नेह ही भक्ति है 'सा परानुरक्तिरीश्वरे भक्तिः'। शाण्डिल्य भक्तिसूत्र का यह वाक्य प्रमाण है।

ज्ञान मार्ग में कोई विशेषता नहीं है, यहाँ सब कुछ ब्रह्म में ही विलीन होता है 'ज्ञानमार्गे न कोऽपि विशेषः क्वापि सर्वस्य पूर्णब्रह्मत्वात्'। ज्ञान की पूर्णता ब्रह्मभाव में है। यद्यपि ज्ञानमार्ग ऐसे तो सगुण माना

जाता है। भगवद् गीता का 'सत्वात् संजायते ज्ञानम्' वाक्य प्रमाण है। ब्रह्मभाव की प्राप्ति के पश्चात् भी यदि ज्ञानी में भक्ति का उदय नहीं हुआ तो वह ज्ञानी मायिकगुणयुक्त होने के कारण जीवन्मुक्ति पर्यंत सनकादि की तरह सगुण अवस्था में ही रहेगा। किन्तु इसके विपरीत जहाँ ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् भक्ति का उदय होता है, वहाँ निर्गुण दिव्यगुणयुक्त भक्ति का प्रादुर्भाव है और वहाँ वरीयता ज्ञान की नहीं, किन्तु भक्ति को रहती है। गीता में 'ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति', 'समःसर्वेषु भूतेषु मद् भक्तिं लभते पराम्'। भक्ति समन्वित ज्ञानी को ही निर्गुण मुक्ति का अधिकारी माना है। 'कैवल्यं सात्विकं ज्ञानम्' वाक्य ज्ञानी को केवल सगुण मुक्ति के अधिकारी का समर्थन करता है। अतः यह निश्चित है कि भक्तिमार्ग ज्ञानमार्ग से श्रेष्ठ है, क्योंकि यहाँ परात्पर पूर्ण परब्रह्म की भक्ति अर्थात् स्नेह पूर्ण सेवा होती है।

आचार्यश्री ने विद्या की पञ्च अवस्थाओं का वर्णन इस प्रकार किया है—१–वैराग्य, २–सांख्य, ३–योग, ४–तप और ५–प्रेमभक्ति। वैराग्य से सांसारिक भोगों की विरक्ति–विषय वैतृष्णा होती है। २–ज्ञान से नित्य और अनित्य वस्तु का निर्णय तथा सर्वतोभावेन त्याग का उदय होता है। ३–योग—आसन प्राणायामादि एकान्त साधन को योग कहते हैं। ४–मन की एकाग्र स्थिति को तप और ५–भगवान के प्रति प्रेमपूर्ण भाव को भक्ति कहते हैं। वैराग्यादि के द्वारा उत्तरोत्तर सहज अवस्था में विकसित ज्ञानगर्भ में जब भक्ति का उदय होता है, तब प्रेमभक्ति की अभिव्यक्ति होती है। इस भक्ति का स्फुरण भक्ति और ज्ञान की सम्बलित अवस्था में होता है। 'ज्ञानी चेत् भजेत् कृष्णं तस्मान्नास्त्यधिकः परः'। आचार्यश्री इस भक्ति को भी मर्यादापूर्ण शास्त्रीय विधि भक्ति कहते हैं, प्रेमस्फुरण बिना केवल ज्ञान तथा श्रवणादि मध्यम भक्ति है। ज्ञान और प्रेम दोनों से रहित श्रवणादि भक्ति, साधन भक्ति नहीं होने पर भी पापक्षय तो अवश्य करती ही है।

भगवान श्रीकृष्ण के प्रति साधन सापेक्ष भक्ति को साधन-कृपा भक्ति कहते हैं, आचार्यश्री द्वारा उपदिष्ट निर्गुण भक्ति निरपेक्ष फलरूपा है, इस कारण वह साधन-रूपा भक्ति से पृथक् है। आचार्यश्री द्वारा प्रतिपादित भक्ति स्वतन्त्र होने से अविहिता भक्ति भी कहाती है, विहित भक्ति से ज्ञानभक्ति श्रेष्ठ है और ज्ञानभक्ति से भी उत्तम पुष्टिभक्ति है।

भगवत्पुत्तमश्लोके भवतीभिरनुत्तमा ।
भक्तिः प्रवर्तिता दिष्ट्या मुनीनामपि दुर्लभा ॥

साधन भक्ति का समन्वय नवधा भक्ति में होता है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

प्रेमलक्षणा भक्ति स्वयं फलरूपा है, वहाँ श्रवणादि साधन होने पर भी केवल पराकाष्ठापन्न विशुद्ध प्रेमभक्ति ही विद्यमान है अर्थात् प्रेमभास्कर के उदय के साथ श्रवणादि भक्ति का सहज ही उद्भव होता है। यहाँ श्रवणादि कथा-कीर्तन स्वयं प्रेमरूपा हैं। आचार्यश्री कहते हैं कि **'प्रेमैव तस्मिन् नवधोक्तभक्तिस्तत्रोपयोगोऽखिल साधनानाम्'**। साधन हेतु से साधन भक्ति भी प्रेमभक्ति का अङ्ग है, यहाँ जो प्रेम का उल्लेख है। यह भी निर्गुण भक्ति का अङ्गरूप साधन ही है, किन्तु फलरूप नहीं है, फलरूप भक्ति स्वयं विशुद्ध प्रेम ही है और वह भक्ति उपरोक्त अङ्ग से स्वतन्त्र है यह जानना आवश्यक है, अर्थात् विशुद्ध भगवद् प्रेम अवस्था में ही भक्ति के साधनों की सार्थकता होती है। प्रेमभक्ति स्वयं फलरूपा होने से साधन निरपेक्ष है, साङ्गोपाङ्ग साधन भक्ति से सापुज्य मोक्ष प्राप्ति होती है और प्रेमलक्षणा भक्ति का परमफल भजनानन्द है। भजनानन्द की साधन दशायें साधन होने पर भी फलदशा में साधन सिद्ध हैं, यह भजनानन्द ब्रह्मानन्द से भी कई कोटिगुणा अधिक और अनिर्वचनीय है, इसी को महा परमानन्द कहते हैं। ऐसा फल ज्ञानमार्ग में दुर्लभ है।

एतत् फलं ज्ञानमार्गेऽपि दुर्लभम् ।

इस भक्तियोग का दूसरा नाम सेवा है। आचार्य चरण भगवान श्रीकृष्ण की प्रेमरूपा सेवा का ही भक्तियोग कहते हैं। **'भजनं सेवैव भक्ति-योग इति तस्यैव नाम'** इसी हेतु से वल्लभसम्प्रदाय का पुष्टिमार्ग, सेवामार्ग के नाम से प्रथित है, यह प्रेमपूर्ण सेवामार्ग हृदयगत प्रेमसुधा द्वारा सिद्ध होता है। आचार्य श्री ने भक्ति और सेवा का मार्मिक वर्णन नितान्त रहस्यपूर्ण विलक्षण ढङ्ग से प्रतिपादित किया है। 'अस्मिन् मार्गे भजनं सेवैव,वैधीभक्तिः शास्त्रीयाः, आन्तर प्रेम सरिता सेवा' ही आदर्श भक्ति है। श्रीमद् भागवत में 'मद् गुणश्रुति मात्रेण मयि सर्वगुहाशये। मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गंगाम्भसोऽम्बुधौ' त्रिलोक पावनी गङ्गाधारावत् जब भक्त के हृदय में रसमयी सेवा आदि की मधुरधारा प्रवाहित होती है और जब वह लोक-

वेद के बन्धन तोड़कर अनवरत रूप से मेरा ही चिन्तन करता है, तब उसके मन की गति को ही भक्तियोग कहते हैं। इस गति को प्राप्त होने पर ही ठाकुर जी के प्रति निष्काम भक्ति और सहज प्रेम भक्ति का उद्गम होता है। इस प्रेमरूपा भक्ति को काल, वेद और मर्यादा का प्रतिबन्ध नहीं हो सकता। वह भक्ति सदा वर्धमान अविच्छिन्न प्रवाहरूप में दृश्यमान होती है। प्रेमरूपा भक्ति अहैतुकी तत्सुखसुखित्व के पथ पर भावमय रसमय और मधुरातिमधुर रूप में प्रकट होती है। 'मानसी सा परा मता'—होने के कारण ही वह अखण्ड रसधारावत् प्रवाहित रहती है। ऐसा भक्त चतुर्धा मोक्ष को भी तुच्छ समझता है।

सालोक्य सार्ष्टि सारूप्य सायुज्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥

—श्रीमद् भागवत

'एक ब्रजरज पर चौमुक्ति वारुँ रे' यह वाक्य अति सान्द्र प्रेम भक्ति में निमग्न भक्त की अवस्था का द्योतक है। **तत् प्राप्तौ वृथा मोक्षः, ब्रह्मानन्दात् महानन्दो भजने वर्तते स्फुटम्।**

पुष्टिमार्ग का भक्तियोग स्वतंत्र है, कारण स्नेहरूपा भक्ति भगवान की तरह स्वतन्त्र होने के कारण अपने प्रेम बल से स्वतः सिद्ध एवं फल-रूपा है। **'येन भक्तियोगेन त्रिगुणमतिव्रज्य मद्भावायोपपद्यते योग्यो भवति'** अतः विहित भक्ति जीव साध्य है और स्वतन्त्र भक्ति भगवद् साध्य है। विहित भक्ति में जीवात्मा को भगवद् सान्निध्य की प्राप्ति साधन द्वारा प्राप्त होती है और स्वतन्त्र भक्ति में भगवान स्व-अनुग्रह द्वारा साधन निरपेक्ष भक्त के हृदय में स्वयं प्रादुर्भूत होकर निजानन्द का दान करते हैं, एक सायुज्य और दूसरी सद्योमुक्ति है। जीवात्मा अविद्याजन्य अहंता-ममतात्मक संसार में फँसा है, जब उसे स्वरूप ज्ञान होता है, तभी कृतार्थ होता है। श्रीमद् वल्लभाचार्य ने जीव के स्वरूपस्थ होने का एकमात्र उपाय 'स्वतन्त्र भक्ति' कहा है, यह पुष्टि भक्ति की स्नेहात्मक सेवा स्वयं ही फलरूपा है। 'सेवा च पुष्टिमार्गे सस्नेह कृपाफलं चैतत्'—स्नेहात्मक स्वतन्त्र भक्ति की उप-लब्धि केवल श्रीहरि के अनुग्रह द्वारा संभावित है, श्रीमद् भागवत में पुष्टि को ही अनुग्रह कहा है। 'पोषणं तदनुग्रहः स मार्गो भगवता एव स्थाप्यते'—भगवदनुग्रह बिना भक्त को भगवद् स्वरूप का ज्ञान कदापि सम्भव नहीं इसी कारण पुष्टिमार्ग में अनुग्रह को ही साधन और फल दोनों ही स्वीकार किया है। 'साधनं च फलं तत्र' दैन्यमेकं हरितोषण कारणम्।" जब साधन रहित दैन्यभाव प्राप्त होता है, तब भगवद्दर्शन के लिये तीव्र उत्कण्ठा आर्त्ति

का उद्गम होता है। यह अलौकिक सामर्थ्यरूपा पुष्टिभक्ति भगवान श्रीकृष्ण द्वारा स्वेच्छा से वरण किये गये भक्त को ही उपलब्ध होती है। साधक के साधन रूप पुरुषार्थ से नहीं, अपितु भगवान आत्मीय रूप से जिसको अङ्गीकार करते हैं वह उनके घर का सेवक बन जाता है—"यमैवेष वृणुते तेन लभ्यः" जब स्वामी अनुग्रह द्वारा निज सेवक को अपनाता है, तब जीवात्मा में प्रेम भाष्कर का उदय होता है। यह परम प्रेम रूपा भक्ति अनन्त जन्मों के सुकृत के फल रूप ही प्राप्त होती है,भगवान में यह विशुद्ध भक्ति—"परम भाग्येनैवप्रीतिर्जायते' जहाँ सेव्य, सेवक, सेवा की सामग्री और फल की एकरूपता का सानुभव दर्शन होता है।

साध्यत्वेन, साधनत्वेन फलत्वेन भबन्तमेव जानन्ति।

भगवत् प्रेम का अरुणोदय होते ही भगवान स्वयं भक्त के हृदय में प्रकाशमान होकर स्थित होते हैं, और भक्त के हृदय को रूपलीला की रसानुभूति से पूर्ण रूप से भर देते हैं। स्वतन्त्र भक्ति मार्ग में भक्त को भगवान के वाह्य दर्शन मात्र से तृप्ति नहीं होती। उसके हृदय में तो निरन्तर भगवद् प्रादुर्भाव द्वारा उत्पन्न लीला रसानुभव के पान की प्यास बनी ही रहती है।

इसके विपरीत वेद विहित भक्ति में भगवान भक्त को संयोग रसदान के लिये अपने में स्थित करके रसानन्द पान कराते हैं, इसके पश्चात् वाह्य स्थिति में जब जीवात्मा को ब्रह्म सम्बन्ध द्वारा अनन्त जन्मों के भगवद्-विरह के बोध द्वारा भगवद् दर्शन की परमोत्कृष्ट आर्त्ति उत्पन्न होती है, तब श्रीहरि अपने भक्त को प्रचण्ड विरहानल से पीड़ित और सन्तप्त देखकर उसके रसात्मक हृदय में स्वयं प्रादुर्भूत होकर कृपानन्द का दान करते हैं तथा अनन्त लीलाओं की रसानुभूति कराते हैं—

क्लिश्यमानाञ्जनान् दृष्ट्वा, कृपायुक्तो यदा भवेत्।
तदा सर्वं सदानन्दं, हृदिस्थं निर्गतं बहिः॥
सर्वानन्दमयस्यापि, कृपानन्दः सुदुर्लभः।
हृद्गतः स्वगुणां श्रुत्वा, पूर्णः प्लावयते जनान्॥

रसानुभूति की इस अनिर्वचनीय दशा को निरोध लक्षण अर्थात् सद्यो मुक्ति कहा है। रास क्रीड़ारता—गोपीजनों को ऐसी ही "स्वतन्त्र भक्ति" सिद्ध हुई थी। भगवद् वदनावतार श्रीवल्लभाचार्य का श्रीविग्रह भी"तत्सारभूत रासस्त्रीभावपूरित विग्रह' प्राप्त था। आपका हृदय सदा सर्वदा कृष्ण

प्रेमामृत रस से पूर्ण प्लावित था, अतएव वे व्रजपति श्रीनन्दनन्दन के नित्य नूतन लीला विहार-सागर में निमग्न रहते थे। श्रीआचार्य द्वारा वर्णित शरणागति मार्ग में प्रपन्न जीवात्मा को भगवद् अनुग्रह द्वारा ही निर्गुण प्रेमाभक्ति की सिद्धि स्वीकार की है। "तदाश्रयतां नृणां तत्कृपापति भविष्यति" इस स्वतन्त्र सिद्धाभक्ति के द्वारा भक्त जब लीला में प्रवेश पाता है, तब उसका प्रत्येक श्वास,क्रिया और भावना भगवद् साहचर्य का अनुसंधान करती है। तब ही वह सच्चे स्वरूप में भगवदीय कहलाता है। शुद्ध स्नेह भावना साधन से उत्कृष्ट सिद्ध दशा को प्राप्त करता है। इस दशा को ही निरन्तर मानसी सिद्धि अर्थात् साक्षात् सेवा कहते हैं।

श्री वल्लभाचार्य का पुष्टिमार्ग अनुग्रहात्मक होने से मानव मात्र को जीवन्मुक्ति और आनन्द का दाता है।

इस मार्ग में किसी प्रकार का भी जातीय भेद—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि नहीं है, यहाँ न कोई स्त्री है और न ही कोई पुरुष है। अपितु जीवात्मा 'हरेर्दास्य' पद को प्राप्त प्रभु का सेवक और वैष्णव है। भगवद् अनुग्रह किसी धर्म विशेष या सम्प्रदाय विशेष पर दृष्टि न रखकर स्नेह विशेष के आधार पर ही जीवात्मा पर रसदान की वृष्टि करता है। वहाँ प्रभु के साथ केवल प्रेम की सगाई है, साधन का बन्धन तो साधक भक्त के साथ है भगवान तो स्वतन्त्र है तदपि प्रेमी भक्त का प्रेम-बन्धन स्वीकार कर भक्तवश्यत्व अवश्य दर्शाते हैं। स्नेह मार्ग में वेद विहित लोक मर्यादा आदि का पालन शक्य नहीं है, कारण कि प्रेम तत्व आत्मा का स्वरूप है, चेतनानन्द स्वरूप, सूक्ष्म एवं अविभाज्य है। अद्वय और प्रकाशक है, महान् आकर्षक एवं आनन्द उदधि है। भगवान की आत्मरति होने के कारण प्रेमतत्व की एक बूंद मात्र से समस्त संसार जीवित रहता है। प्राणी मात्र प्रेमतत्व की बूंद द्वारा स्ववंश की रक्षा करता है, माता अपने शिशु को स्तनपान कराती है—इसी प्रेमतत्व के कारण। प्रेम के आधिपत्य में ही जीव मात्र क्रीड़ा करता है। यह ही सार वस्तु है।

भक्ति मार्ग में भक्त का सम्बन्ध भगवद् चरणारविन्द और भगवद् वदनारविन्द दोनों के साथ होता है, किन्तु वेद विहित भक्ति में केवल श्री चरण की सेवा ही उपलब्ध है। वहाँ सेवकों में लक्ष्मी नारदादि विहिता—भक्ति के आदर्श माने जाते हैं। 'ॐ नमः श्रीपरमहंसास्वादिता चरणकमल चिन्मकरन्दाय भक्तजन मानस निवासाय श्रीकृष्णचन्द्राय' यह वेद विहित

भक्ति का लक्षण है, जहाँ चरणकमल का ही रसास्वादन है। किन्तु स्वतन्त्र भक्ति मार्ग में भगवान के वदनारविन्द की सेवा ही प्रधान रूप से उपलब्ध है, 'मुखं हि भक्त्यात्मकं भवति'—अर्थात् मुखकमल का रसास्वादन कराने वाली स्वतन्त्र भक्ति परम दुर्लभ है, कारण वहाँ 'कृष्णाधरामृतास्वाद' का अनवरत पान होता है—'भक्ति स्वतन्त्रा शुद्धा च दुर्लभा' है,जहाँ भगवानको भी बन्धन स्वीकार करना पड़ता है। "गोपसीमन्तिनीनां स्वतःदत्ता हरिणा तद्भावनारूपा विरहानुभवात्मिका" यहाँ एक क्षण का भी भगवद् विरह कल्प के समान है, "त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्।"

भक्ति तत्व अति गूढ़ विलक्षण मधुर मनोरम और हृदय का विषय है, आचार्य श्री ने मायावाद को परास्त कर शद्धाद्वैत ब्रह्मवाद के स्थापन द्वारा अपने वेदान्त दर्शन को मस्तिष्क की कसौटी पर सर्व श्रेष्ठ स्थापित किया है। तथापि आपका हृदय परम कोमल और कृष्ण प्रेमामृत रससार से पूर्ण प्लावित होने के कारण लोकोत्तर विकासयुक्त था। बुद्धि का विकास अभ्यास और मनन पर निर्भर है और हृदय का विकास दैवी सम्पत्ति युक्त परम सौभाग्य पर निर्भर है,सत्य वस्तु यहहै कि परम प्रेमदशाकी रसानुभूति का विषय स्वानुभव गम्य है, वाणी का विषय नहीं है, कारण कि रसात्मक सम्पत्ति की अनुभूति गुणातीत रसिक सन्त हृदय को ही होती है, "गुणातीत एव हि जीवास्तदधिकारिणः" अनुग्रह मार्ग में भगवद् कृपा जितनी जिस प्रकार जैसा भी रसदान करे, उतना ही जीवात्मा भगवद् रस को धारण कर सकता है। रसतत्व अलौकिक मधुर और शृङ्गारात्मक है, उसको प्राकृत वासनाग्रस्त मानव लौकिक अर्थ में घटाते हैं, यह तो अनधिकारी के हस्त में शस्त्र देने के समान भयङ्कर है, शुद्ध प्रेमतत्व में स्वसुख की गन्ध भी नहीं होती, किन्तु तत्सुख सुखित्वम् के आधार पर आधीनता और अनन्यता के गुणों का समन्वित परमोज्ज्वल दर्शन होता है। "विषयाक्रान्त देहानां नावेशः सर्वथा हरेः" शृङ्गार युक्त परमोज्ज्वल निकुञ्ज लीलारस का माधुर्य विरल है,सुविज्ञ रसिक भक्तजन अपनी रससाधनाको बहुत सावधानी से सुरक्षित करते हैं। अनिच्छुक अरसिक अनधिकारीजन दिव्य निकुञ्जरसको धारण नहीं कर सकते। परम आधेय के योग्य आधार (अधिष्ठान) होना चाहिये। अन्यथा दिव्य मधुर रस कच्चे पात्र में से बाहर झर जायेगा, इसीलिये विद्वान और वैष्णव होने पर भी अरसिक वैष्णव को मधुर भाव युक्त साहित्य दर्शनीय नहीं है। "एतद्रसानभिज्ञस्तु मा द्राक्षीदपि वैष्णवैः"

आचार्य श्री ने बुद्धि प्रधान शुष्क वेदान्त विषय में तात्त्विक दर्शन द्वारा रस-मयता का संयोजन अद्भुत रीति से दर्शाया है। आपके उपदिष्ट मार्ग में स्नेह प्रधान सेवा को आत्मोन्नति का सुगम्य साधन माना है। हृदय प्रधान स्त्री समाज को कृपापात्र समझकर आपने समादृत किया है। भगवत् लीला में से बिछुड़े दैवी जीवों के उद्धार के हेतु और स्ववदनकमल की विरहात्मक भक्ति का अदेय दान देने के निमित्त आचार्यश्री का प्राकट्य हुआ था। 'अदेय दान दक्षः' नाम से श्री विठ्ठलनाथजी ने सर्वोत्तम स्तोत्र में स्मरण किया है।

पूजा सार्वजनिक है, सेवा एकान्तिक व्यक्तिगत है 'भक्ति शास्त्रीया, आन्तर प्रेम सहिता सेवा' यह पहले बता चुके हैं। स्नेह हृदय का रस होने के कारण सार्वजनिक प्रदर्शन का विषय नहीं हो सकता। रस की रसमयता गुप्त रहने से ही सुरक्षित रहती है, "रसो गुप्त एव रसत्व-मापद्यते" "अगुप्त रसो रसाभासः स्याम्" रस जब वाणी का विषय बनता है, तब वह रसाभास होता है, इस कारण पुष्टि सम्प्रदाय में देवालयों की प्रधानता नहीं, अपितु मन्दिरों में नन्दालय की भावना से यशोदोत्सङ्ग लालित बालकृष्ण की सेवा होती है। वैष्णव जन अपने गृह में मन्दिरों की प्रणाली और परिपाटी के अनुगत होकर व्यक्तिगत स्नेहानुसार सेवा द्वारा प्रभु के साथ अन्तर्गत भावात्मक सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

पूजा फलाकांक्षा के लिये की जाती है, सेवा भगवद् कृपा की प्राप्ति के लिये होती है, जहाँ सेव्य स्वरूप का सम्पूर्ण सुख विचार कर ही हरेक सेवा-कार्य होता है। सेवा मार्ग की परिपाटी भक्त के अनुसार सेव्य का शयन, भोजन, स्नान, वस्त्राभरण, सङ्गीत, कीर्तन आदि ऋतु और काला-नुसार होते हैं। यहाँ सेवोपयोगी प्रत्येक वस्तु अलौकिक स्वरूपात्मक और भावात्मक है,सेवा में लौकिक बुद्धि करना भगवद् अपराध माना गया है।

इस भावनात्मक रसप्रचार मार्ग में सुगन्ध इत्र आदि श्रीस्वामिनीजी के श्रीअङ्ग का सौरभ है, यहाँ व्रज भक्त ही पुष्प हैं, भाव भावना ग्रन्थ में प्रत्येक सामग्री का भावमय सविस्तार निरूपण किया है। विधि प्रधान मार्ग में सेवोपयोगी सामग्री उपकरण हैं, जो पूजा में अनिवार्य होते हैं। किन्तु स्नेह प्रधान सेवा में वैष्णव की प्रत्येक चेष्टा जैसे जलसेवा, फलसेवा, वस्त्र-सेवा, प्रांगण मार्जन आदि समस्त सेवा स्वरूपात्मक ही है। भक्त की देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरणादि प्रभु के ही हैं, ऐसा भाव रहता है।

पूजा मार्ग में स्तोत्र, नमस्कार, वंदन आदि की एक सीमा है। किन्तु भक्ति मार्ग में भक्त का हृदय स्नेह पूर्ण होने से अंतर्गत दशा में साक्षात् रसानुभूति के लिये विह्वल रहता है **'सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मण विपश्चितः' रसं हि एवायंलब्ध्वा आनंदी भवति, आनंदमयोऽभ्यासात्'** रस-प्रचुर रसस्वरूप शृङ्गाररस सर्वस्व के वंदनाधरामृत का अनवरत पान निरुपाधि निर्गुण स्नेह मार्ग में ही उपलब्ध है। पूजा मार्ग में भक्त पूजा समाप्ति पर संतोष प्राप्त करता है। किन्तु पुष्टिमार्ग में दर्शन के उपरांत भगवत्-साहचर्य भी अपेक्षित है। सेवा मार्ग में भक्त प्रभु - समर्पित-वस्तु का ही उपभोग करता है "असमर्पित वस्तूनां तस्मात् वर्जनमाचरेत्", पूजा की शुद्धि में देश, काल, द्रव्य, मंत्र, कर्ता और क्रिया की परिशुद्धि आवश्यक है, किन्तु सेवा सदा सर्वदा सर्वभावेन चलती है। अतः वहाँ कालादि नियामक नहीं हैं। 'अत्र कालो न नियामकः' पूजा में—सहजा देशकालोत्था वेदलोक-निरूपिताः"—दोष बाधा करते हैं। किन्तु स्नेह मार्ग में स्नेह की प्रगाढ़ता के कारण दोषों का अस्तित्व ही नहीं ठहरता। क्योंकि यहाँ प्रतिकूल पदार्थ भी सानुकूल होते हैं।

ब्रह्मसंबंध करणात् सर्वेषां देहजीवयोः।
सर्वदोष निवृत्तिर्हि दोषाः पंचविधा स्मृताः॥

ब्रह्म संबंध मंत्र की दीक्षा लेने पर भक्त का समस्त कुल स्वदेह-इन्द्रियाँ, और अन्तःकरण और पुत्र दारादि के समस्त दोषों की निवृत्ति होती है। "भक्ति पुनाति मन्निष्ठान्'—पूजा मार्ग में देवता का आह्वान-विसर्जन मंत्र विधि द्वारा ही होता है, किन्तु सेवा मार्ग में देवका आवेश नहीं है, अपितु साक्षाद् भगवत् स्वरूप विराजमान होते हैं, पुष्टिमार्ग में आचार्य श्री के वंशज मूर्ति को मात्र मूर्त्ति ही न समझ कर उसे सहज स्नेह दृष्टि से देख कर और स्पर्शादि से लालित कर पंचामृत से स्वयं स्नान कराने के पश्चात् ही भक्त को देते हैं। वह साक्षात् चेतनानंद स्वरूप भक्त के जीवन पर्यन्त उसके सिर पर विराजते हैं भक्त के लिये यह सेव्य स्वरूप ही परम मंगलकारी प्रेमभाजन है, भक्त सेवक बनकर स्वामी की सेवा अत्यन्त अनुरक्ति और जागृति के साथ करता है जहाँ केवल प्रभु के सुखार्थ ही विचार-पूर्ण समस्त चेष्टायें होती हैं। सेवा एक भावात्मक मार्ग है और भाव ही भगवद् रति है। 'भावनया सिद्धः साधनं नान्यदिष्यते' भावात्मक मार्ग में श्रीठाकुर जी को सुख देना ही भगवद् धर्म है।

पूर्व मीमांसा धर्म का और उत्तर मीमांसा ज्ञान का निरूपण करता है, आचार्य श्री द्वारा उपदिष्ट मार्ग इससे भिन्न और उत्कृष्ट है "लौकिक

वैदिक मार्गापेक्षया पुष्टिमार्ग उत्कृष्टः" यहाँ कार्य पुरुषार्थ दाता स्वय भगवान को ही पुरुषार्थ रूप में उपलब्धि होती है। भगवान भी आदर्श भक्त का भक्तवश्यत्व स्वीकारते हैं—"अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतंत्र इव द्विज"वशं कुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा"।

साधन निरपेक्ष स्वरूप शक्ति द्वारा भगवान जीवात्मा के समस्त कार्यों की सिद्धि करता है। यहाँ निःसाधनता ही साधन है और साधन ही फल है, यहाँ धर्मस्वरूप में नहीं किन्तु धर्मीस्वरूप में निष्ठा होती है यहाँ इष्ट के साथ अनवरत स्वरूप संबंध बना रहना ही साधन और फल है। जहाँ अपने इष्ट से इतर सब कुछ बाधक प्रतीत होता हो, वहाँ लोक वेदकी स्मृति भी संभावित नहीं है-यहाँ तो देह रक्षा भी तत्स्वरूप के सुखार्थ ही है। इस दशा को प्राप्त होने पर ही भक्त को अपने स्वामी की कृपा का आनन्द प्राप्त होता है। गोपीजनों को इस प्रेम भक्ति के सिद्ध होने पर ही धर्मी स्वरूप श्रीकृष्ण को "मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं, संत्यज्य सर्व विषयांस्तव पादमूलम्" कहने का सामर्थ्य प्राप्त था।

आचार्य श्री ने जीवों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है। पुष्टि जीव, मर्यादा जीव और प्रवाही जीव। संक्षिप्त में प्रवाही जीव सदा अंश प्रधान संसारासक्त लौकिक माया से आवद्ध और स्वदेह सुखार्थ प्रवृत्ति इच्छा से युक्त होते हैं। ये मानसिक सृष्टि के जीव हैं। प्रवाही जीव कर्मानुसार स्वोदर पोषण फल प्राप्त कर उच्चनीच योनियों में जन्म लेते हैं। "क्षीणे पुण्ये मृत्युलोकं विशन्ति"।

मर्यादा जीव चिदंश प्रधान होते है ये ज्ञान द्वारा या धर्म द्वारा अक्षरब्रह्म पर्यन्त तक की स्थिति को प्राप्त करते हैं। ये वैदिक मर्यादा सृष्टि के जीव हैं। पुष्टि जीव भगवद् के श्री विग्रह की चरण - रजमय देहयुक्त होने के कारण भगवद् अंगीकृत सृष्टि है। उनको पुष्टि-अनुग्रह रूप फल सिद्ध है, पुष्टि भक्त रसात्मक स्वरूप का अभिप्राय जानते हैं और उनके समस्त क्रिया कलाप भगवद् रूप होने से प्रभु की सम्पूर्ण इच्छा तृप्ति करते हैं। 'तस्मात् जीवाः पुष्टिमार्गे भिन्ना एव न संशयः"।

पुष्टि भक्तों में भी शुद्ध पुष्टि जीव और मिश्र पुष्टि जीव दो प्रकार के हैं। मिश्र पुष्टि जीव भगवद् धर्म में रतियुक्त हैं, ये भगवद् गुणगान कथा द्वारा समय यापन करते हैं। इस प्रकार के भक्तों में मानसिक त्याग दशा होती है। हृदयस्थ प्रभु स्व-कथा गुणगान श्रवण करके मिश्रपुष्टि भक्तों को स्वरूपानन्द प्रदान करते हैं।

शुद्धि पुष्टिजीव आनन्दांश प्रधान होते हैं, शुद्ध पुष्टिजीव नित्यसिद्धा कायव्यूहागोपीजनों के सादृश भगवान के साथ सहयोग करते हैं। इनका देह आनन्दांश प्रधान भगवद् सेवार्थ लीलामण्डल का अविभाज्य अङ्गरूप होने के कारण अविकृत नित्य आनन्दरूप होता है। महानुभावों का कदापि पतन नहीं होता है और ये रोगादि उपद्रवों से रहित होते हैं। भगवद् कार्य के लिये ही उनका प्राकटच होता है, वे भगवद् सामर्थ्ययुक्त एवं सौन्दर्य आदि दिव्य गुणालंकृत होते हैं। केवल वाह्य दृष्टि से उनकी मनुष्याकृति होती है। ऐसे शुद्ध प्रेमयुक्त शुद्धपुष्टि भक्त संसार में दुर्लभ हैं।

पुष्टि प्रवाही जीव भगवद् धर्मोंमें आसक्त होकर तीर्थाटन करते हैं। तथा पुष्टि जीवात्मा मर्यादा पुष्ट होने से भगवद् गुणों के ज्ञान से युक्त होते हैं और भगवद् कार्य सिद्ध्यर्थ जगत में प्रकट होते हैं।

पुष्टि मार्ग में सेवा और कीर्तन

भगवद् भक्ति में सेवा मार्ग बहुत सूक्ष्म और गहन है, 'सेवा धर्मो परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।' जिन महानुभाव पुरुषों ने सेवा द्वारा भगवद् प्रसन्नता प्राप्त की है, वे ही सेवा विषयक शिक्षा दे सकते हैं। सेवा में साक्षात् स्वरूप की इच्छा जानकर तदनुसार सेवा करने पर ही परमानंद की उपलब्धि होती है। साध्य सेवा की सिद्धि होने तक सेवा साधन रूप ही रहती है। अतः पुष्टि मार्ग के आचार्यों द्वारा दर्शित परिपाटी के अनुसार वैष्णवों को सेवा करनी चाहिये। जो वैष्णव दैन्यतापूर्वक अपनी सेवा श्री-आचार्य द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से स्वीकारने की प्रभु से प्रार्थना करते हैं उन पर प्रभु प्रसन्न होकर उस साधक की सेवा स्वीकार कर सेवा—फल का दान (रसानुभूति) प्रदान करते हैं,"भक्ति निष्ठा तदा ज्ञेया यदा कृष्णःप्रसीदति।"

वैष्णव को ब्राह्म मुहूर्त में निद्रा त्याग कर भगवद् दर्शनार्थ प्रातः स्मरण पूर्वक पदगान द्वारा श्रीहरि का चिन्तन करना, कण्ठस्थ तुलसीमाला का दर्शन कर श्री आचार्य का और स्वगुरु का स्मरण कर वन्दन करना, देह कृत्य के बाद शुद्धि स्नान करके चरणामृत लेकर तिलक मुद्रा धारण करना, सेवा के समय हमेशा वस्त्र साथ रखना एक कटी वस्त्र और एक उपरण। श्री ठाकुरजी की सेवा में अविलम्ब उपस्थित होकर प्रथम मन्दिर को दण्डवत् करना, मन्दिर को नन्दालय अथवा निकुञ्ज भावना से बन्द द्वार को बड़ी सावधानी से खोलना, निज मन्दिर में लगे दरवाजे के दोनों कपाटों को स्वामिनीजी के दो नेत्र-कमल की भावना करना और प्रार्थना करना कि द्वारस्थ ललितादिक सखी मण्डल और व्रज भक्त मण्डल मेरे

ऊपर कृपा कर मुझे अङ्गीकार करे। आचार्यश्री तथा श्री गुसाँईजी का शरणापन्न समझकर मुझको निज मंदिरकी दासीरूप में स्वीकृत कर ठाकुरजी निज युगल स्वरूप की सेवा प्रदान करने की कृपा करें। तत्पश्चात् मन्दिर में रक्खे खास जलसे मृत्तिका लगाकर हस्त प्रक्षालन करना। इसके पश्चात् तीन बार घण्टानाद द्वारा व्रज की गौ के कंठ में बँधी घंटोंके नादकी भावना करना और शैया भोग के बंटा—(चाँदी की डिब्बी में रक्खा भोग), पुष्प माला, जल झारी आदि बाहर लाकर प्रसादी पात्र में धरना, मन्दिर की बुहारी मार्जन कर सिंहासन तकिया आदि को साफ करना, जल की झारी मार्जन कर श्री यमुनाजल की भावना द्वारा जल भर कर लाल वस्त्र से झारी को लपेटना तथा उस लाल वस्त्र में श्री यशोदाजी श्री यमुनाजी और अष्ट सखियों की भावना करना तत्पश्चात मङ्गला भोग की तैयारी करना, मङ्गला भोग में ताजा किञ्चित् उष्ण मिश्री इलायची केशरादि मिश्रित दूध, मेवा, दही, मिश्री, मलाई, मगज का लड्डू आदि अनसखरे (पक्वान) पदार्थ धरना, तदुपरान्त आचार्यश्री का स्मरण, अष्टाक्षर मन्त्र जप द्वारा श्रीठाकुरजी अथवा युगल स्वरूप को जगाना और हाथ में सुगन्धि इत्रादि लगाकर श्री स्वरूप को सिंहासन पर स्थापित करना, शीतकाल में रजाई को गरम कर स्वरूप को लपेटना और आचार्यश्री तथा श्री गुसांईजी की चौरासी दो सौ बावन वैष्णव की कानी से मङ्गला भोग स्वीकारार्थ प्रभु से प्रार्थना कर,पर्दा लगाकर बाहर आ जाना और शैया मन्दिर के वस्त्रादि को ठीक करना।

ठाकुरजी को जगाते समय प्रातः काल पुष्टि मार्गीय मन्दिरों में भैरवी राग का कीर्तन होता है, उस समय व्रज भूमि के प्रातः काल का रमणीय दर्शन नयन गोचर होता है, भैरवीराग के पद इस प्रकार हैं—

जागिये व्रजराज कुँवर कमलकोष फूले।
कुमुदिनी जीय सकुचि रही भृङ्गलता झूले ॥१॥
नभचर खग करत रोर बोलत बनराई।
रांभत गौ मधुर नाद वच्छ चपलाई ॥२॥
रवि प्रकास विधु मलिन गावत व्रजनारी।
"सूर" श्री गोपाल उठे परम मङ्गलकारी ॥३॥

× × × ×

प्रातः सखं धर धरतें देखन को मुख, आई हैं सब गोकुल की नारी।
अपनो कृष्ण जगाय यशोदा, आनन्द मङ्गलकारी ॥१॥

सब व्रजकुल के प्रान जीवन धन, या सुत की बलिहारी ।
'आसकरन' प्रभु मोहन नागर, गिरि गोवर्द्धन धारी ॥२॥

राग मल्हार में कुम्भनदासजी का एक पद—

सखीरी बूंद अचानक लागी ।
सोवत हुती मदन मद माती, घन गरज्यौ तब जागी ॥१॥
दादुर मोर पपैया बोले, कोयल शब्द सुहागी ।
कुम्भनदास लाल गिरिधर सों, जाय मिली बड़ भागी ॥२॥

तत् पश्चात् कलेऊ के पद गान होते हैं, माता यशोदा सब सामग्री तयार करके नन्दनन्दन को वात्सल्य भावपूर्वक कलेऊ खिलाती हैं, देखिये राग भैरव में—

छगन मगन प्यारेलाल कीजिये कलेवा ।
छींके ते सगरो दहि ऊखल चढ़ि काढ़ लेहो,
पहरैं लेहो झँगुली, फेंट बांध लेहो मेवा ॥१॥
यमुना तट खेलन जावो, खेलन मिस भूख लगे,
कौन परी प्यारेलाल निश दिन की टेवा ।
'सूरदास' मदनमोहन घर ही क्यों न खेलो लाल,
दैहों बक डोर जंगी हंस मोर परेवा ॥२॥

एक और पद राग रामकली में—

हौं बल जाऊँ कलेऊ लाल कीजे ।
खीर खाँड़ घृत अति मीठौ है, अबकी कौर बछ लीजे ॥१॥
बेनी बड़े सुनो मन मोहन, मेरो कहो पतीजे ।
औटयौ दूध सद्य धोरी को, लाल घूंट भर पीजे ॥२॥
बारी जाऊँ कमल मुख ऊपर, अँचरा प्रेम रस भीजे ।
बोहोरेऊ जाय खेलो यमुना तट "गोविन्द" संग कर लीजे ॥३॥

प्रभु को मङ्गला भोग उसारने के बाद मङ्गला का दर्शन वैष्णवों को कराया जाता है । तब कीर-भैरव राग की जमावट होती है ।

श्री विठ्ठलनाथजी ने मङ्गला समय के एक उत्तम कीर्तन की रचना संस्कृत में की है, जो श्रीकृष्ण के प्रति अत्यन्त सुन्दर राग से वर्णित है—

मङ्गल मङ्गलं व्रजभूमि मङ्गलम् ।
मङ्गलमिह श्रीनन्द यशोदा,
नाम सुकीर्तनमेतदुरुचिरोत्सङ्ग, सुलालित पालितरूपम् ॥१॥

श्री श्रीकृष्ण इति श्रुतिसारं नाम,
स्वार्तजनाशयतापापहमिति मङ्गलरावम् ।
व्रजसुन्दरी वयस्य सुरभि वृन्द मृगीगण,
निरूपम भावा मङ्गल सिन्धुचयाप ॥२॥
मङ्गलमीषत्स्मित युतमीक्षण भाषणमुव्रत—
नासापुट गत मुक्ताफल चलनम् ।
कोमल चलदङ्गुलिदलससङ्गत वेणु निनाद-
विमोहित वृन्दावन भुवि जाताः ॥३॥
मङ्गलमखिलं गोपीशितुरति,
मन्थरगति विभ्रम मोहित रासस्थितगानम् ।
त्वं जय सततं श्रीगोवर्धनधर
पालय निज दासान् ॥४॥

विभास राग में मङ्गला आरती इस प्रकार गाई जाती है—

मङ्गल आरती गोपाल की माई ।
नित प्रति मङ्गल होत निरख मुख, चितवन नयन विशाल की ॥१॥
मङ्गल रूप श्यामसुन्दर को, मङ्गल भृकुटी सुभाल की ।
'चतुर्भुज' प्रभु सदा मङ्गल निधि, बानिक गिरिधर लाल की ॥२॥

एक और पद में कन्हैया का गौचारण देखिये—

आज में देखे कुँवर कन्हाई ।
प्रात समै निकसे गायन सङ्ग, श्याम घटा झुकि आई ॥१॥
पीत वसन पहरे तन सुन्दर, कुसुम्भी पाग सुहाई ।
मुक्ता माल रुरत उर ऊपर, मुरली मधुर बजाई ॥२॥
कहा कहों अंग-अंग की शोभा, मोपै बरनि न जाई ।
श्री विट्ठल गिरिधर देखे तें, क्यों हु कल न पराई ॥३॥

इसके पश्चात् मङ्गल भोग की झारी धरना, आचमन कराके श्री ठाकुरजी को बीड़ा (ताम्बूल) समर्पित करना । मङ्गला आरती करके हस्त प्रक्षालन कर श्री ठाकुरजी को स्नान कराना ।

प्रथम एक थाल में चौकी रख कर ऊपर चौड़ा वस्त्र बिछा कर शृङ्गार उतारना, पश्चात् इत्र-फुलेल लगा कर अभ्यङ्ग (उवटना) कराना । आंवले का बारीक चूर्ण, हल्दी कपूर काछली आदि सुगन्धि द्रव्यों से मिश्रित उबटन बना कर धीरे से मृदु स्पर्श द्वारा अभ्यङ्ग लगाना । पश्चात् यदि

शीतकाल हो तो उष्ण, ग्रीष्मकाल हो तो शीतल जल से स्नान कराना, श्री-अङ्ग को कोमल वस्त्रों से पोंछकर सुन्दर वस्त्र आभूषण आदि से स्वरूप को विभूषित करना। श्याम स्वरूप को चोवा और गौर स्वरूप को अतर समर्पण करना। शीतकाल में रुई का या ऊन का वस्त्र और उष्णकाल में बारीक ठण्डा वस्त्र धारण कराना। वस्त्राभूषण के पश्चात् श्री स्वामिनीजी के श्रीअङ्ग की भावनापूर्वक दर्पण दिखाकर चरण स्पर्श करना चाहिये।

शृङ्गार भोग में मिठाई, मक्खन, मिश्री का लड्डू, दही, मेवा, केसर युक्त दूध, खीर, मैदा की नरम पूरी अचार आदि सामग्री समर्पित करना चाहिये। शृङ्गार भोग के पश्चात् आचमन, फिर वस्त्र द्वारा मुख प्रोक्षण करके दो ताम्बूल बीड़ा धरना। भोग की चौकी आदि को गीले वस्त्र से धोना चाहिये।

शृङ्गार के समय इस प्रकार के पद गाये जाते हैं, राग विलावल में देखिये—

करत शृंगार जसोदा मैया।
कर ले अपनी गोद बिठाके, छिन-छिन प्यावे धैया ॥१॥
मोरपिच्छ शिर गरे में गुंजा, विविध वसन बनैया।
'रसिक'प्रीतमप्यारी के दर्शन कर, मुसकत नैन समुझैया ॥१॥

शोभा आज भली बनि आई।
जलसुत[1] ऊपर हंस विराजत, तापर इन्द्रवधू[2] दरसाई ॥१॥
दधिसुत[3] लियो-दियोदधिसुत[4] में, यह छवि देख नन्द मुसकाई।
नीरज सुत बाहन को भक्षण, "सूर" श्याम ले कीर चुगाई ॥२॥

शृङ्गार के बाद ग्वाल रूप का दर्शन भीतर होता है, गोपबाल ठाकुरजी के साथ गौ चराने को वन में जाते हैं, भोजन का समय होतेही सब गोपबाल-गोपाल के सामने अर्ध चन्द्राकार बैठकर एक साथ मिलकर आरोगते हैं ये छाक सभी गोपबालक अपने-अपने घर से साथ लाते हैं। इसको राजभोग कहते हैं।

उक्त भावना से युक्त वैष्णव श्री ठाकुरजी को सिंहासन पर पधरावे। तत्पश्चात् जल की झारी, धूप-दीप धरके गन्ध मन्त्र द्वारा तुलसीदल

१—जलसुत=कमल, २—इन्द्रवधू=जल विशेष,
३—दधिसुत=मक्खन, ४—उदधिसुत=मुख।

श्री ठाकुरजी के वाम चरणारविन्द में समर्पण करे। प्रत्येक सेवा के समय ब्रह्म सम्बन्ध की स्मृति को जागृत रक्खे। राजभोग की प्रत्येक सामग्री में पञ्चाक्षर मन्त्र द्वारा तुलसी पत्र छोड़े। राजभोग के शंखोदक के द्वारा सिंचन कर श्री स्वामिनीजी के अधरामृत की भावना करे। तत्पश्चात् पर्दा देकर बाहर आकर अष्टाक्षर मन्त्र का जप तथा सर्वोत्तम स्तोत्र का पाठादि कर रसोई के पात्रों का मार्जन करे। भोग का पर्दा ४५ मिनिट से अधिक नहीं रखना चाहिये। पर्दा हटाने के बाद आचमन एवं मुखवस्त्र देकर तांबूल की बीड़ी धरनी चाहिये। श्री ठाकुरजी के चरणारविन्द में तुलसी दल चढ़ा कर पुष्प माला अर्पण करना, शृङ्गार के समय श्री ठाकुरजी के सन्मुख सुन्दर पद कीर्तनकार गाते हैं, सारङ्ग राग में कुछ पद देखिये—

विराजत ग्वाल मण्डली अहो बल मोहन छाके खात।
शिलान ओदन जङ्घन रोरी अंगुलिन
बिच फल धर और गोरस के पात ॥१॥
काहु कौर देत श्याम काहु को बहकावत
काहु ले झपट खात तब मोहन मुसकात जात।
'नन्ददास' प्रभु की लीला लख कहत ब्रह्मा शिव
हम न भये अहीर व्रज में यों कहि कहि पछतात ॥२॥

× × × ×

आज दधि मीठो मदन गोपाल।
भावत मोहि तिहारो जूठो, चंचल नयन विशाल ॥१॥
आन पात बनाये दोना, दीये सबन को बाँट।
जनि नहिं पायो सुनो रे भैया, मेरी हथेरी चाट ॥२॥
बहुत दिनन हम बसे कुमुद वन, कृष्ण तिहारे साथ।
ऐसो स्वाद हम कबहु न चाख्यो, सुन गोकुल के नाथ ॥३॥
आपुन हसत हंसावत ग्वालन, मानस लीला रूप।
'परमानन्द' प्रभु हम सब जानत, तुम त्रिभुवन के भूप ॥४॥

* * * *

आनन्द सिन्धु बढ्यो हरि तन में।
श्री राधा मुख पूरन शशि निरखत
उमगि चल्यो व्रज वृन्दावन में ॥१॥

इत रोक्यो यमुना इत गोपिन,
कछु एक फैल परयो त्रिभुवन में।
ना परस्यो कंठ अरु ज्ञानी
अटक रह्यो रसिकन के मन में ॥२॥
मन्द मन्द अवगाहत बुद्धि बल
भक्त हेत लीला छिन छिन में।
कछु एक लह्यो नन्द सूनु कृपा तें
सो देखियत 'परमानन्द' जन में ॥३॥

राजभोग आरोगने के पश्चात् ग्वाल बाल स्वस्थ होकर बैठते हैं, उस समय की शोभा दर्शनीय है।

शिर धरे पखौवा मोर के।
गुञ्जा फल फूलन के लटकत, शोभित नन्द किशोर के ॥१॥
ग्वाल मण्डली मध्य विराजत, कौतुक माखन चोर के।
नाचत गावत बेनु बजावत, अंस भुजा सखा और के ॥२॥
तैसेई फरहरात रंग भीने, छवि पीताम्बर छोर के।
'परमानन्द' दास को ठाकुर, मन हरत नयन की कोर के ॥३॥

मध्याह्न पश्चात् ग्वाल-बाल वृक्षों की शीतल छाया में विश्रान्ति लेते हैं, सूर्यास्त होते ठाकुरजी गोवर्धन की तलेटी में अनेक प्रकार की लीला ग्वाल-बालों के साथ करते हैं। पश्चात् उत्थापन समय की लीला होती है।

पश्चात् प्रसाद सेवन विधि इस प्रकार होती है—राजभोग का प्रसाद गृहागत वैष्णव भक्तों के साथ लेना चाहिये, प्रथम गौग्रास निकाले, वैष्णवजन में श्री महाप्रभुजी श्री गुसांईजी और श्री ठाकुरजी विराजते हैं—ऐसी भावना रख कर महाप्रसाद सेवन करे। कदाचित समय पर वैष्णव अभ्यागत प्राप्त न होवे तो गौग्रास निकाल कर यह प्रसाद सेवन कर ले। मुखशुद्धि के लिये ताम्बूल आदि लेकर क्षणिक विश्राम करने के उपरान्त पुष्टिमार्गीय ग्रन्थों का प्रवचन करे।

शाम को चार बजे शुद्ध होकर स्नानादि से निवृत्त होकर अपरस में तिलक धारण कर चरणामृत लेवे और ऋतु के अनुसार उत्थापन की मेवा सामग्री आदि तैयार करे। अक्षय तृतीया से लेकर रथयात्रा पर्यन्त चन्दन की कटोरी, टेंटी पक्व आम, कांकड़ी, पना आदि भोग धरे। रथयात्रा से

जन्माष्टमी पर्यन्त छोंकी वस्तु और ऋतु के फल धरे। प्रबोधिनी एकादशी से डोलोत्सव पर्यन्त इक्षुरस तथा ऋतु के फल नमक युक्त पपड़ी, मैदा या आटा की पूड़ी मावा के लड्डू मलाई आदि भोग में धरना चाहिये।

तीन बार घण्टा नाद करके उत्थापन करना, दण्डवत् कर मन्दिर के द्वार खोलना, शय्या के पास की झारी, बँटा—भोग का डिब्बा—माला बीड़ी उठाकर प्रसादी पात्र में रखना और झारी आदि पात्रों का मार्जन करना। तत्पश्चात् झारी जल से भर कर उत्थापन भोग धर कर पर्दा लगाना। और दण्डवत् कर बाहर आकर बैठना, समयानुसार भोग उसरा के आचमन-मुखवस्त्र कर ताम्बूल बीड़ी धरना। उत्थापन समय के पदों का गायन कीर्तन इस प्रकार करना—

सुवल श्रीदामा कह्यो सखन सौं, अर्जुन शङ्ख बजैये।
घर जेवे की भई है विरियां, श्री गिरिधरलाल जगैये ॥१॥
ठौर ठौर तें मधुरी धुनि बाजे, मधुर मधुर स्वर गैये।
कुञ्ज सदन जागे नन्द नन्दन, मुदित बीरा फल लैये ॥२॥
हरिदास वर्य के पूरे मनोरथ, गोकुल ताप नसैये।
लटकत आवत कमल फिरावत, 'परमानन्द' बढ़ैये ॥३॥

इसके पश्चात् ग्वाल-बाल मिल कर फिर रोंढा के समय पर भोजन करते हैं, उत्थापन के पश्चात् के भोग में रोंढा की भावना है। इस समय का कीर्तन बड़ा आकर्षक होता है—

विराजत बन माला जु गरें।
बहुत भाँति कुसुमन सौं गूंथी, गुञ्जत भ्रमर अरें ॥१॥
इन्द्र धनुष की उपमा राजत ठाड़े कुञ्ज तरे।
'रामदास' प्रभु नटवर काछें मुरली अधर धरें ॥२॥

मल्हार राग

गाव सब गोवर्द्धन तें आई।
बछरा चरावत श्री नँद नन्दन, बेणु बजाय बुलाई ॥१॥
घेरि न घिरत गोप बालक पें, अति आतुर ह्वै धाई।
बाढ़ी प्रीति मदन मोहन सौं, दूध की नदी बहाई ॥२॥
निरखि स्वरूप व्रजराज कुंवर कौ, नयननि निरखिनिकाई।
'कुम्भनदास' प्रभुके सन्मुख, ठाड़ी भई मानौं चित्र लिखाई ॥३॥

गौरी राग

वन तें सखन सङ्ग गायन के पाछै पाछै आवत लाल कन्हाई।
गोरज छुरित अलकन की छवि, मोपै बरनत वरनि न जाई ॥१॥
पीतवसन सोहे किंकिनी ध्वनि मोहे,तामें पुनि मधुर मधुर शब्द सुहाई।
'नन्ददास' प्रभु आंचर सौं जसुमति, पौंछें कर मुख चुम्बन मुसकाई ॥२॥

श्री ठाकुरजी का वदन कमल धूलि धूसरित है, श्री यशोदा माता बहुत प्रेम से आलिङ्गन दे लालजी के मुख कमल को अपने अँचल से पौंछती हैं और दिनभर का विरह ताप बुझाती हैं। गोप बालकों को घैया (ताजा-दूध) आरोगवाती हैं। पश्चात् सन्ध्या समय होने पर ब्यारू की तैयारी होती है तब सूर्यास्त समय में यमन राग गाया जाता है—

यमन राग

लाड़िले बोलत है तोहि मैया।
साँझ समै गोधन सङ्ग आवत, चुम्बन लेकर गोद बैठैया ॥१॥
मधु मेवा पकवान मिठाई, दूध भात अरु दार बनैया।
'परमानन्द' प्रभु करत वियारू यशुमति देख बहुत सुख पैया ॥२॥

कान्हरो राग

करत वियारु हँस हँस मोहन।
चितवन में चितचोर लेत हैं, मां सुध भूली गोहन ॥१॥
औटयो दूध कनक बेला भर,ले ललिता आई जु अगोहन।
फूंक फूंक कर पीवत सांवरो, आँचल देत यशोहन ॥२॥
देखत बने कहत नहीं आवे, उपमा को यह कोहन।
'कृष्णदास' प्रभु गिरधर नागर,चित्त बोरयो मृदु मुसकोहन ॥३॥

पुष्टि मार्गीय वैष्णव गृह में संध्या भोग नहीं लगता। किन्तु श्रीवल्लभ कुल के गृह में यह नियम नहीं चलता, वहाँ सन्ध्या भोग धरा जाता है।

अतः वैष्णव प्रथम शैया मन्दिर में जाकर शैया के ऊपर चादर रखता है, फिर श्री ठाकुरजी का शृङ्गार बढ़ता है। कर्णफूल, वेसर, चिबुक तिलक, कटिकिङ्किणी, पहुँची, नूपुर आदि शृङ्गार बढ़ाया नहीं जाता। बाद में जल-झारी भर कर शयन भोग में दूध,दूधभात, संधाना और सखरी भोग धरना। कदाचित नित्य सखरी भोग न बन सके तो द्वादशी के दिन जरूर सकरी भोग धरना चाहिये। जल की कटोरी धरने के बाद भोग अर्पण कर बाहर आना, थोड़ी देर बाद सुगन्धि युक्त गरम दूध तथा मेवा

धरना, बाद दण्डवत् प्रार्थना कर बाहर आना। आचमन और मुखवस्त्र थोड़े समय पश्चात् करना चाहिये। ताम्बूल बीड़ा श्री विग्रह स्वरूप के वाम भाग में धर कर शयन का दर्शन कराना। शयन के समय बाधा बढ़ा देना चाहिये, किन्तु पाग और टोपी नहीं बढ़ाना अर्थात् उतारना नहीं। शैया के पास दो जल-झारी अथवा एक ही झारी अवश्य धरना और कटोरी मक्खन-मिश्री और डब्बा में मगद का लड्डू धरना तत्पश्चात् श्रीठाकुरजी को शैया पर शयन कराना,शयन कराते समय वेणु और मुख वस्त्र शैया में धरना,चादर उढ़ाना शीत समय में दुलाई रजाई धरना,श्रीस्वामिनीजी को वाम भाग में शयन कराना चाहिये। शयन भोग का बीड़ा और राज भोग की माला लेकर बाहर आना, ऋतु अनुसार भाव पूर्वक शैया के वस्त्र बनाना। भावात्मक भक्ति भाव प्रधान होता है। और भाव पूर्ण सेवा को ही भक्ति कहते हैं, मन्दिर का ताला बन्द कर दण्डवत करना चाहिये।

वस्त्राभूषण धारण की तालिका

(१) कार्तिक शुक्ला एकादशी से मकर संक्रान्ति पर्यन्त रेशमी वस्त्र।
(२) मकर संक्रान्ति से माघ कृष्णा अमावस्या पर्यन्त छींट के वस्त्र।
(३) माघ शुक्ला प्रतिपदा से माघ शुक्ला वसन्त पञ्चमी पर्यन्त जरीके वस्त्र
(४) माघ शुक्ला ६ से माघ शुक्ला १५ पर्यन्त रेशमी वस्त्र।
(३) माघ शुक्ला १५ से फाल्गुन शुक्ला १५ पर्यन्त सूती सफेद और रंग विरंगे वस्त्र।
(६) चैत्र कृष्णा २ से चैत्र वदी अमावस्या पर्यन्त जरी और रेशमी वस्त्र।
(५) चैत्र शुक्ला १ से चैत्र सुदी ६ पर्यन्त छपा वस्त्र।
(३०) चैत्र सुदी १० से वैशाख सुदी ३ पर्यन्त मलमल के रङ्गीन वस्त्र।
(३१) वैशाख सुदी ४ से आषाढ़ सुदी ५ पर्यन्त मलमल के सफेद वस्त्र विना किनारी के।
(३२) आषाढ़ सुदी ६ से भाद्रपद अमावस्या पर्यन्त रंग विरंगे किनारीयुक्त।
(३३) आश्विन सुदी १ से आश्विन सुदी ६ पर्यन्त छपे वस्त्र।
(१४) आश्विन सुदी १० से कार्तिक सुदी १० पर्यन्त तास और जरी के वस्त्र।

वस्त्र धारण के पश्चात् शयन के समय इन पदों का गायन अवश्य ही करना चाहिये।

विहाग राग

पोढ़िये श्याम बलैया लेहूं।
अतिश्रम भयो बन गौ चरावन, द्योस परी है धाम ॥१॥

सीरी ब्यार झरोखन के मध आवत अति सीतल सुखधाम ।
'आस करन' प्रभु मोहन नागर अङ्ग अङ्ग अभिराम ॥२॥

अदानो राग

जर जाओ री लाज मेरी ऐसी कौन काज आवे,
कमल नयन नीके देखन न दीने ।
वन तें आवत मारग में भेंट भई,
सकुच रही इन लोगन के लीने ॥१॥
कोटि यतन करि रही री निहारवे कूं,
अंचरा की ओट दे दे कोटि श्रम कीने ।
'नन्ददास' प्रभु प्यारी ता दिन तें मेरे नयना,
उन्हीं के अङ्ग अङ्ग रङ्ग रस भीने ॥२॥

केदार राग

कदम वन बीथिन करत विहार ।
अति रस भरे मदन मोहन, प्रिय तोरचो प्रिया उर हार ॥
कनक भूमि बिथुरे गज मोती, कुञ्ज कुटी के द्वार ।
'गोविन्द' प्रभु श्री हस्त कर पोवत, सुन्दर व्रजराज कुमार ॥

राग केदारो

पोढ़िये प्रिय कुंवर कन्हाई ।
नव नव वसन नवल कुसुमावली, हों अपने कर सेज बनाई ॥
नाहिन सुने सखी काहूकी, ग्वाल मण्डली सब वौराई ।
'आश करण' प्रभु मोहन नागर, नागरिकूं ललिता ले आई ॥

पुष्टि मार्गीय अष्ट छाप के कवियों ने स्वयं साक्षात् दर्शन कर भगवत् लीला के हजारों पद गाये हैं। यह लीला वर्णन तो महासागर है, इसमें कोई अल्पज्ञ तो चूं चूं पात भी नहीं कर सकता। उपरोक्त पदों द्वारा पुष्टि मार्गीय मन्दिरों के नित्य का कार्यक्रम बहुत ही संक्षिप्त में दिया है। प्रातः से शयन पर्यन्त तक समय २ पर जो दर्शन होते हैं उसके अनुकूल ही मन्दिर में कीर्तनकार गाते हैं। मन्दिरों में कीर्तनकारों द्वारा पद गायन अत्यन्त श्रवण प्रिय मधुर ध्वनि युक्त होता है। सुमधुर कण्ठ ध्वनि और वेणु ध्वनि श्रवण करने का सौभाग्य कभी २ प्राप्त होता है। नित्य के राग भी भिन्न २ ऋतु के अनुसार बदलते रहते हैं, यह पुष्टि मार्ग की विशिष्टता है, अन्नकूट

के दिन 'विलावल' की जमावट होती है। इसके बाद 'मालकोष' की प्राधान्यता होती है। धनुर्मास में 'ललित' राग और वसन्तोत्सव के दिन में 'वसन्त' की प्रधानता छाई रहती है, वसन्त की वहार में होली के दिनों में वसन्त के साथ 'होरी' (काफी) राग का साम्राज्य जमा रहता है, इसके साथ ही शीतल गुण युक्त 'सारङ्ग' राग भी गाया जाता है, किन्तु फूलडोल के दिन से 'नूर सारङ्ग' राग का प्राधान्य हो जाता है 'नूर सारङ्ग' ग्रीष्म काल की उष्णता का शमन करता है। उष्ण काल के अन्त में रथ-यात्रा से मल्हार राग प्रारम्भ होता है। वर्षा ऋतु की 'मल्हार'—ध्वनि अति सुन्दर और मोहक होती है। प्रातः काल से शयन पर्यन्त के पदों में विशेष रूप से 'मल्हार' राग ही गाया जाता है। झूला के समय अर्थात् श्रावण-भादों में पुष्टि मार्गीय सङ्गीत कला की श्रेष्ठता का दर्शन होता है।

पुष्टि सम्प्रदाय में महा भक्त श्री जयदेव कवि की अष्टपदी भी गाई जाती है, पुष्टि मार्ग में इस अष्टपदी का बहुत समादर है। नृसिंह जयन्ती पर 'माल्य राग' में अष्टपदी इस प्रकार गाई जाती है— 'प्रलय पयोधि जले धृतवानसि वेदम्' बसन्त आदि उत्सव पर—"ललित लवङ्ग लता परिशीलन" अष्टपदी–३ और "चन्दन चर्चित नील कलेवर—अष्टपदी–४। यह उष्णकाल में चंदन— वाघा के शृङ्गार के समय विहाग या कान्हरा राग गाते हैं और "रति सुख सारे"—अष्टपदी–१ उष्ण काल में यमुना तट पर चोबा की भावना करु राग गुर्जर में गाते हैं।

मैथिल कोकिल कविवर विद्यापती भी पुष्टिमार्ग में स्मरणीय हैं, मन्दिरों में पुष्टि सम्प्रदाय के कीर्तनकार इनके दो-चार पद अवश्य गाते हैं, श्री माध्व गौड़ेश्वर श्री राधावल्लभ और श्री निम्बार्कीय महानुभावों के पद भी कीर्तन में गाये जाते हैं।

श्री विद्यापति का गाया पद राग जोगिया में—

नैंना माई नाहिन करत कह्यो।
कहा करूँ कैसहु नहिं छूटे, जो हठ हरख कह्यो ॥१॥
आवत हुतो सहज मग अपने, चपलन उलट चह्यो।
निगम स्वरूप धाय खन अपने, लोभित चाहि लह्यो ॥२॥
जो व्रत लियो प्रथमहि निरखत, अन्तहु सो निवह्यो।
'विद्यापति' गोपाल सदा इन, अँखियन लागे रह्यो ॥३॥

श्रीविट्ठलनाथजी स्वयं भी महान सङ्गीतज्ञ आचार्य थे, आपने अपनी रचनाओं को भगवत्सेवा में अर्पित किया है। आपने बहुत से स्तोत्र संस्कृत

भाषा में रच कर श्रीकृष्ण भक्ति का विशद साहित्य प्रचार किया है,आपका 'शृङ्गार रस मण्डन' ग्रन्थ अद्वितीय शृङ्गार भक्ति प्रधान है, जयदेव महा कवि की भाँति आपने बहुत सी अष्ट पदी रची हैं,जो मन्दिरों में गाई जाती हैं। पुष्टि सम्प्रदाय में श्री कुम्भनदासजी के पदों का बहुत बड़ा आदर है, एक बार बादशाह अकबर ने आपको आगरा बुलाया था तो आपने एक पद में सुन्दर उत्तर दिया—

भक्तन कहा सीकरी काम ।
आवत जात पन्हैया टूटी, बिसर गयो हरि नाम ॥१॥
जाको मुख देखे दुख उपजत,ताकूं करनो परयो प्रनाम ।
'कुम्भनदास' लाल गिरिधर बिनु,यह सब जूठो धाम ॥२॥

श्री विट्ठलनाथजी रचित 'शृङ्गाररस मण्डन' ग्रन्थ के पदों का वसंत समय पर मन्दिरों में अष्टपदी के रूप में गान होता है—

हरिरिह व्रज युवती शतसंगे ।
विलसति करिणी गणवृत वारण वर इव रतिपति मानभंगे ।
विभ्रम संभ्रम लोल विलोचन सूचित सञ्चित भावम् ।
कापि हगञ्चल कुवलय निकरैं रञ्चति तं कलरावम् ॥१॥
स्मित रुचि रुचिरतरानन कमलमुदीक्ष्य हरे रतिकन्दम् ।
चुम्बनि कापि नितम्बती कर तल धृत चिबुकममन्दम् ॥२॥
उद्भट भाव विभावित चापल मोहन निधुवन शाली ।
रमयति कामपि पीन घनस्तन विगुलित नव वन माली ॥३॥
निज परिरम्भ कृतेनुद्भुतमभिवीक्ष्य हरिं सविलासम् ।
कामपि कापि बलादकरोदग्रे कुतुकेन सहासम् ॥४॥
कामपि नीवीबन्ध विमोचस सम्भ्रम लज्जित नयनाम् ।
रमते सम्प्रति सुमुखिबलादपि कर तल धृत निजवसनाम् ॥५॥
प्रियपरिरम्भ विपुल पुलकावलि द्विगुणित सुभग शरीरा ।
उद्गायति सखि कापि समं रस हरिणा रति रणधीरा ॥६॥
विभ्रम सम्भ्रमगलदञ्चल मलयाञ्चितमंगमुदारम् ।
पश्यति सस्मितमपि विस्मित मनसा सुदृशः सविकारम् ॥७॥
चलति कयापि समं सकर ग्रहमलसतरं सविलासम् ।
राधे ! तव पूरयतु मनोरथमुदितमिदं हरिरासम् ॥८॥

यहाँ यह समझना आवश्यक है कि श्री स्वामिनीजी ही मर्यादा रहित विशुद्ध पुष्टि लीला के अनुभव की मुख्य अधिष्ठात्री देवी हैं, इसी रहस्य को

उपरोक्त अष्टपदी द्वारा स्पष्ट किया है, यह अधिकार पुष्टि भक्तों को भी प्राप्त नहीं है। श्री गुसांईजी स्वयं श्री चन्द्रावली सखी के अवतार हैं, तदपि उन्होंने अपने महारास के मनोरथ को श्री स्वामिनीजी द्वारा ही परिपूर्ण कराने की विज्ञप्ति की है। अर्थात् अनुग्रह के भक्तिमार्ग में श्री स्वामिनीजी की कृपा सर्वाधिक आवश्यक है। यह सम्प्रदायगत गूढ़ रहस्य है, नित्यसिद्धा और ऋषि एवं श्रुतिरूपा समस्त गोपियों ने जब श्रीस्वामिनीजी से महारास-लीलानुभवार्थ प्रार्थना की, तब श्री स्वामिनीजी ने अपनी कृपा द्वारा वहीं महारासलीलाका मनोरथपूर्ण कराया था। पुष्टिमार्ग की यह लीला वैचित्री है, वैष्णवजन इसी रसानन्द में निमग्न रह कर जीवन यापन करते है।

श्रीवल्लभ सम्प्रदाय के मूल आचार्य श्रीविष्णुस्वामी

विक्रम सम्वत् पूर्व ६०० वर्ष दक्षिण भारत में पांडव देश के राजाधिपति श्री पांडव विजय के दरवार में श्री देवस्वामी श्रेष्ठ पुरोहित ब्राह्मण थे। इनकी परम साध्वी पतिव्रता यशोमती नामक पत्नि थी, परम पावन दम्पति की भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान विष्णु स्वयं ही पुत्ररूप से इनके घर अवतीर्ण हुये थे। माता पिता ने पुत्र का नाम भी विष्णुस्वामी रख दिया, श्री विष्णुस्वामी का श्रीअङ्ग जन्म से ही दिव्य विभूति सम्पन्न एवं दिव्य प्रभामय और सर्व गुणालंकृत था। आपश्री "कृष्ण तवास्मि" पञ्चाक्षर मन्त्र का नित्य जप करते थे। करुणासागर भगवान श्रीकृष्ण ने आपको बाल्य अवस्था में ही साक्षात् दर्शन दिया था और श्रीवेदव्यासजी के ब्रह्म सूत्र का अभ्यास करने का आदेश भी दिया था। तदुपरान्त श्री शुकदेवजी ने स्वयं श्रीमद् भागवत की कथा श्रवण करा कर श्रीमद् भागवत की शिक्षा प्रदान की। पश्चात् आचार्यश्री त्रिपुरारीजी द्वारा सांप्रदायिक शिक्षण प्राप्त कर आचार्य पद को प्राप्त किया था। श्री विष्णुस्वामी ने व्यासजी के ब्रह्म-सूत्र, उपनिषद् और गीता पर भाष्य किया है। किंतु वह अप्राप्त है, आपके द्वारा रचित भक्ति और ज्ञान ग्रन्थ प्रायः लुप्त हो गये हैं, श्रीमद्भागवत के टीकाकार श्रीधर स्वामी ने श्री विष्णु स्वामी रचित 'सर्वज्ञ-सूक्त' ग्रन्थ का उल्लेख अपनी टीका में किया है आपने समग्र भारत में पर्यटन कर दिग्विजय प्राप्त की, और बाल-गोपाल श्रीकृष्ण की भक्ति का उपदेश देकर शुद्धाद्वैत सिद्धान्त का प्रचार किया। आपके द्वारा प्रचारित दिव्य भक्ति के प्रभाव से ही आप 'सर्व मुनि' नाम से विख्यात हो गये थे। श्री विष्णु स्वामी ने विष्णु कांच में आचार्य मठ की स्थापना की थी, जो काल प्रभाव से लुप्त हो

गई है। जीवन के अन्तिम समय आपने वैष्णव संन्यास धारण किया और अन्त में भगवद् धाम में प्रविष्ट हो गये।

श्री विष्णुस्वामी ने जीवात्मा और ब्रह्म के स्वरूप का निर्णय चतुः श्लोकी की रचना द्वारा किया है। आचार्य के चार श्लोक बहुत मननीय और ग्राह्य हैं—

अणुजीवात्मानं हरिचरणदासं न जननम्,
विभिन्नं जानीत प्रति तनु संज्ञानाश विभवम् ।
चिदानन्दाकारं व्रजपति कुमारं कजनकम्,
गुणौघं निर्दोषं भजत मनुजा ब्रह्मसदयम् ॥

आपने श्री मुख से कहा है—जीवात्मा अणुस्वरूप और प्रत्येक शरीर में भिन्न है, जीवात्मा श्रीहरि का अंश होने से श्रीहरि का नित्य दास है, जीवात्मा नित्य है उसका जन्म नहीं है, भगवान श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द-घन विग्रह स्वरूप समस्त प्राकृत दोष रहित अर्थात् अप्राकृत और निखिल दिव्य शुभ गुणों के धाम हैं। सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के उत्पादक पिता भी श्रीकृष्ण ही हैं। अतः उस करुणासागर परब्रह्म का भजन करना प्राणीमात्र का धर्म है।

कृपापारावारं भवजलधिपारं सुखकरं,
जनानामाधारं प्रणतशिरसां शान्त मनसाम् ।
सदा भक्त्या लभ्यं प्रणय परयानुग्रह परं,
चिदानन्दं नन्दात्मजममर सेव्यं श्रयत भो !।।

हे त्रिविध ताप दग्ध जनो ! कृपा का अनन्त महासागर, संसार सागर से मुक्ति का प्रदाता, परमानन्द दाता, राग द्वेषादि विकार रहित शान्त चित्त, नमन परायण शरणागत—आपन्नों का एक मात्र आधार, प्रेम लक्षणा भक्ति द्वारा प्राप्त, प्रेमी भक्तों को कृपादान वर्षी, नित्य अनुग्रहात्मक सकल सुर सेव्य चिदानन्द घनश्याम स्वरूप श्री श्यामसुन्दर की ही शरण ग्रहण करो, इससे ही तुम्हारा परम हित होगा।

गोपबालों से युक्त यमुना तट पर खेलते हुए श्रीकृष्ण दर्शन की तीव्र लालसा में आप कहते है—

कदा बालं कृष्णं सखिभिरखिलैः साग्रजमहः,
मिलित्वा खेलन्तं तरणि तनया रोधसि मुदा ।
यशोदायाः क्रोडे व्रजपतिपुरः कापि लपितं,
विराजं राजन्तं नयन पथमास्तास्मि समुदम् ॥

वह समय कब आयेगा, जब श्री बालकृष्ण के समस्त मधुमङ्गल श्रीदामा सुबल आदि सखा श्री बलरामजी के साथ सूर्य तनया श्री यमुनाजी के तट पर आनन्द पूर्वक क्रीड़ा में अनुरक्त अथवा व्रजेश्वरी श्री यशादाजी की गोद में विराजमान अथवा व्रजराज श्री नन्दरायजी के समक्ष खेलते हुए मैं उस दिव्य छटा का आनन्दाश्रुपूर्ण नेत्र से दर्शन प्राप्त करूँगा ?

भगवान से बहिर्मुख मानव की दशा का वर्णन आपने इस प्रकार किया है—

न जानन्त्येव त्वामसुरमतय शास्त्रविदितं,
त्वदीया माया तान्भ्रमयति नितान्तं व्रजपतेः ।
त्वदीयास्त्वानेव प्रणयभर शैथिल्य मनसो,
निरीक्षन्ते साक्षात्त्वदवगत बाधा जवनिका ॥

हे व्रजेन्द्र नन्दन ! समस्त शास्त्र स्तुति द्वारा आपका ही प्रतिपादन करते है, फिर भी आसुरी बुद्धियुक्त मनुष्य आपका निश्चय नहीं कर सकता, परिणाम स्वरूप आपकी दुरत्यय माया उनको नितान्त संसार-भवाटवी में भ्रमित रखती है, सत् मार्ग से विचलित ये विचारे जीव भूले हुए पड़े हैं।

किन्तु जो भक्त आपके शरणागत होकर प्रेम भक्ति में निमग्न गद्-गद् कण्ठ और द्रवित चित्त से आपका गुणगान करते हुए आपकी कृपा का लाभ प्राप्त करते हैं—माया स्वय ही उनके आगे से पर्दा हटा देती है, तब वे भक्त साक्षात् आपका दर्शन करते हैं।

श्री विष्णुस्वामी ने बहुत वर्ष पर्यन्त भगद् सेवा की, किन्तु श्रीठाकुर जी का दर्शन नहीं हुआ तब श्रीकृष्णविरह से तप्त होने पर आपका स्वास्थ्य भी गिर गया। प्रभु दर्शन के लिये विरहाग्नि से संतप्त श्री विष्णुस्वामी जब अति विरह ज्वाला से दग्ध होने लगे तो श्री नन्दनन्दन ने स्वयं दर्शन दिया और कहा कि तेरे समक्ष मैं साक्षात् प्रकट होकर एक बात कहता हूँ कि मेरे सिवाय अन्य कोई तत्व ही नहीं, अनन्त रूप और अनंत नाम मेरे स्वरूप में ही हैं, और मैं साकार रूप से एक और अद्वितीय, विविध भेद शून्य अनिर्वचनीय हूँ। माया, जगत, ब्रह्म सब दृशादृश्य मेरा ही स्वरूप है जो विरुद्ध धर्म दिखाई पड़ते हैं वे सब मेरे विरुद्ध धर्माश्रय में ही हैं।

मैं ही सगुण निर्गुण साकार निराकार अविशेष हूँ। अतः समस्त शंका छोड़ सर्व भावेन मेरा भजन करो यह स्वतः कहकर उपनिषद् का अभिप्राय स्पष्ट किया और शंका दूर की।

श्रीधर स्वामी ने श्रीमद् भागवत में प्रथम स्कन्ध के सप्तम अध्याय का ५-६ की व्याख्या में श्री विष्णुस्वामी रचित 'सर्वज्ञ सूक्त' के तीन श्लोक दिये हैं—

ह्लादिन्या संविदाश्लिष्ट सच्चिदानन्द ईश्वरः ।
स्वाविद्या संवृतो जीवः संक्लेशनिकराकरः ॥१॥
सा ईशो यद्वशे माया सजीवोयस्तयार्दितः ।
स्वाविर्भूत परानन्दः स्वाविर्भूत सुदुःख भूः ॥२॥
स्वादृगुत्थ विपर्यास भवभेदज भीशुचः ।
यन्मायया जुषानास्ते नमिभं नृहरिं नुमः ॥३॥

उपरोक्त श्लोकों में आचार्यश्री के सिद्धांत का संकेत है। वह सच्चिदानंद स्वरूप है और ह्लादिनी, सम्विद शक्ति से आश्लिष्ट है, ईश्वर अनादि स्वयं प्रकाश और परमानन्द स्वरूप है, यह सगुण अर्थात् समस्त दिव्याति-दिव्य गुणों का अधिष्ठान है, चिन्मय दिव्य साकार नित्यस्वरूप है और माया प्रभु के अधीन है, वशवर्तिनी है। अतः अखिल ब्रह्माण्ड नायक पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण ही परात्परब्रह्म तत्त्व है।

जीवात्मा सम्पूर्ण क्लेशों का आश्रय और अविद्या से आवृत्त चेतन जीव है, जीवात्मा अज्ञानी होने के कारण माया से पीड़ित होकर दुःख भोगता है, जीवात्मा अनादि काल से विषम परिस्थितियों में पड़ा दुःख भोग रहा है। स्वरूपतः स्वयं प्रकाश होने पर भी स्वभावतः दुष्ट है,अविद्या के वश माया मोहित होकर जीवात्मा संसार में द्वैत (भेद) बुद्धि द्वारा भय और शोकग्रस्त रहता है।

भगवान श्रीकृष्ण सच्चिदानन्द स्वरूप हैं, प्रभु स्वयं कृपान्वित होकर अवतार लेते हैं,प्रभु का श्रीविग्रह पाञ्चभौतिक (प्राकृत) नहीं है किन्तु दिव्य चिदानन्द स्वरूप और नित्य है, प्रभु का जन्म मरण नहीं है। प्रभु का केवल आविर्भाव और तिरोभाव होता है।

भगवान स्वयं सत् चित् आनन्द स्वरूप है और उनकी सधिनी, संविद और ह्लादिनी शक्ति हैं। प्रकृति अथवा माया उनकी निकृष्ट शक्ति है, सम्विद ज्ञानात्मिका और ह्लादिनी आनन्दात्मिका शक्ति है, भगवान इन दो शक्तियों से आश्लिष्ट हैं, अर्थात् भगवान ही सर्व विधिष्ठान, सम्पूर्ण ज्ञान स्वरूप और पूर्णानन्द स्वरूप हैं, जहाँ-जहाँ जो ज्ञान और आनन्द की अभि-व्यक्ति है, वह भगवान का ही अंश मात्र है।

जीवात्मा अविद्या से आवृत्त होने से उसकी बुद्धि अशुद्ध वासनाग्रस्त और सीमित रहती है, वह स्वयं आत्मोद्धार करने में असमर्थ है। क्योंकि माया से परावृत्त बना रहने के कारण जन्म मरण रूप आवागमन चक्र से वह मुक्त नहीं हो सकता।

इस परिस्थिति में भगवान का अनुग्रह ही एक मात्र उद्धार का उपाय है, भगवान क्योंकि मायाधिपति हैं अतः वे अपने संकेत मात्र से ही जीवात्मा को व्यामोह से मुक्त कर देते हैं। जीवात्मा के हृदय में भगवद् कृपा का आविर्भाव होते ही अविद्या और क्लेशों का नाश हो जाता है और उनमें ज्ञान और आनन्द का उदधि प्रकटता है, जीवों का उद्धार भगवद् कृपा द्वारा ही हो सकता है, भगवान साधन-साध्य नहीं किन्तु कृपा साध्य हैं, इसलिये जीवात्मा का सर्वात्म भाव से श्रीहरि के चरणारविन्द में सम्पूर्ण समर्पण शरणागति द्वारा होना चाहिये, और अन्तर्बाह्य भगवद् कृपा प्रकाश का अनुभव करना चाहिये।

भगवद् अनुग्रह, भगवद् शरणागति

सर्वतो भावेन भगवद् अनुग्रह पर निर्भर रह कर जीवात्मा को श्रीहरि के चरणारविन्द की शरण ग्रहण करना ही परम पुरुषार्थ है। परम पुरुषार्थ को चरितार्थ करना ही जीवन की परम सार्थकता श्री विष्णुस्वामी के सिद्धान्त में मानी गई है।

श्री विष्णुस्वामि मते व्रजेश तनयः श्रीब्रह्मसच्चिन्मयः,
शुद्धेच्छावशतो जनाननुगतः प्रादुर्भवत् गोकुले।
मुक्तिर्दास्य मितीरितं मधुरिपोस्तत्साधकोऽनुग्रहः,
स्वाविद्या रहिता हरेरनुचरा ब्रह्मात्मकं सज्जगत्॥

यह श्लोक परम्परा से प्राप्त है, श्री विष्णुस्वामी के मतानुसार व्रजेन्द्रनन्दन मुरलीधारी श्रीकृष्णचन्द्र अपनी ह्लादिनी स्वरूपा श्रीराधा के साथ नित्य अभिन्न सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म हैं। वह नित्य गौलोक विहारी स्वानुरागी भक्तों की धर्म अर्थ काम मोक्षेच्छा से रहित और केवल प्रेमाविष्ट भक्त की शुद्ध इच्छा के वश होकर ही गोकुल में व्रजराज श्रीनंदरायजी के यहाँ प्रकट हुये हैं।

आचार्य के सिद्धान्त में श्री नन्दनन्दन यशोदोत्संग लालित श्रीकृष्ण की नित्य सेवा का अधिकार प्राप्त करने का नाम ही मुक्ति है, और उस मुक्ति का साधन श्री नन्दनन्दन का अनुग्रह है, उनका सेवाधिकार प्राप्त

होने पर ही अविद्या का नाश होता है, भगवद् अनुग्रह द्वारा भक्त के हृदय की अज्ञान ग्रन्थी छिन्न होकर भक्त के हृदय में प्रकाश का उदय होता है ।

यह जगत ब्रह्मात्मक है, श्रीहरि का संकल्प स्वरूप होने से सत्स्वरूप भी है उसके अविकृत परिणामवाद को शुद्धाद्व त कहते हैं । श्रीविष्णुस्वामी द्वारा प्रवर्त्तित सम्प्रदाय कुछ क्षीण होने पर श्रीमद् वल्लभाचार्यजी ने भगवान के आदेशानुसार विष्णु स्वामी सम्प्रदाय का समुद्धार किया और शुद्धाद्वैतवाद द्वारा श्री यशोदोत्संग लालित बालकृष्ण की सम्यक् भक्ति का प्रचार किया है । श्री विष्णुस्वामी ने भगवदाज्ञानुसार आपके सेव्य स्वरूप को साक्षात् भगवत् स्वरूप मानकर सेवा की और "कृष्ण तवास्मि" पञ्चाक्षर मन्त्र के जप द्वारा दिव्य जीवन व्यतीत किया है, श्री विष्णुस्वामी रुद्र परम्परागत के आचार्य माने जाते हैं ।

-×-

पत्र के स्वामित्व का विवरण

१—प्रकाशनस्थान—	वृन्दावन (मथुरा)
२—प्रकाशन अवधि—	मासिक
३—मुद्रक का नाम—	प्रीतमलाल गोस्वामी
४—क्या भारत का नागरिक है ?—	हाँ
५—पता—	रतन प्रेस, अठखम्भा, वृन्दावन
६—प्रकाशक का नाम—	रामदास शास्त्री
७—क्या भारत का नागरिक है ?—	हाँ
८—पता—	चार सम्प्रदाय आश्रम, वृन्दावन
९—सम्पादक का नाम—	रामदास शास्त्री
१०-क्या भारत का नागरिक है ?—	हाँ
११-पता—	चार सम्प्रदाय आश्रम, वृन्दाबन
१२-उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों ।	रामदास शास्त्री चार सम्प्रदाय आश्रम, वृन्दावन

मैं रामदास शास्त्री एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार दिये गये विवरण सत्य हैं ।

रामदास शास्त्री

१५।३।७४

मावा वाला

मिठाई की कीमत मावा से होती है।

मावा यदि ताजी है, बढ़िया है भैंस या

गौ के दूध का है–

तो

मिठाई का स्वाद कुछ और ही होगा।

अतः

सर्वोत्तम ताजा पक्का **मावा** प्राप्त

करने के लिए लिखिये–

फर्म :

नत्थीमल हीरालाल मावा वाला

४०, गुलालबाड़ी, बम्बई–४

With Best Compliments form.

INSISTON

ARUNA

Centrifugal Water Pumps

Tele : **KISSAN** **Phone** : 62165 74270

KISSAN IRON WORKS

Manufacturers of weights & Measures, C. I. Pipes & Fittings

Sugarcane Crushers & Machinery Parts, Chaff Cutter.

Centrifugal water pumps.

SULTANGANJ, AGRA–4.

किसान आइरन वर्क्स, सुलतानगञ्ज–आगरा–४

Estd—1959 Phone No—3234

With Best Compliments from !

HOME FOR GUIDES

OF

POSTS AND TELEGRAPHS

EXAMINATIONS

★

PRASAD PUBLI-CATIONS

22, Ramnagar,
MEERUT
(U. P.)

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥
—मनुस्मृति

मनुष्य को चाहिए कि वह सत्य बोले, कड़वे सत्य को न बोले, प्रिय मीठे लगने वाले असत्य को भी न बोले, यही सनातन धर्म है।

डालमिया सिमेंट (भारत) लिमिटेड

डालमिया पुरम् (तमिलनाडु)

A DALMIA ENTERPRISE

मुख्य कार्यालय :
8-सिन्धिया हाउस, नई दिल्ली-११०००१